कल्याण



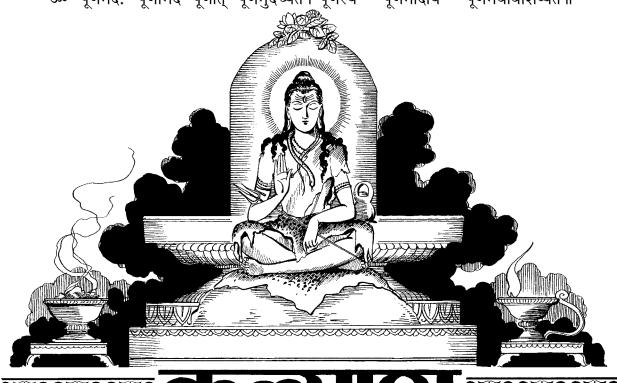
ूल्य १० रुपय





शुक्लाम्बर शशिवर्ण भगवान् विष्णु Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sha

🕉 पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥



COUNTY वन्दे वन्दनतुष्टमानसमितप्रेमप्रियं प्रेमदं पूर्णं पूर्णकरं प्रपूर्णनिखिलैश्वर्येकवासं शिवम्।

सत्यं सत्यमयं त्रिसत्यविभवं सत्यप्रियं सत्यदं विष्णुब्रह्मनुतं स्वकीयकृपयोपात्ताकृतिं शङ्करम्।।

संख्या गोरखपुर, सौर ज्येष्ठ, वि० सं० २०७५, श्रीकृष्ण-सं० ५२४४, मई २०१८ ई० पूर्ण संख्या १०९८

शुक्लाम्बर शशिवर्ण भगवान् विष्णुका ध्यान

चतुर्भुजम्।

♦

*

शक्लाम्बरधरं विष्णं शशिवर्णं

**** ध्यायेत् सर्वविघ्नोपशान्तये॥ प्रसन्नवदनं ❈ कुतस्तेषां \Diamond जयस्तेषां लाभस्तेषां पराजयः। . % **%** येषामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दन:॥ \Diamond **%** * \$ [ब्रह्माजी देवताओंसे भगवान् विष्णुके स्वरूपका वर्णन करते हुए कहते हैं— \Diamond हे देवताओ!] 'भगवान् विष्णु श्वेत वस्त्र धारण किये हुए हैं, चार भुजाओंसे विभूषित * **%**

♦ छायी रहती है। सारे विघ्नोंकी शान्तिके लिये ऐसे श्रीहरिका ध्यान करे। ऐसे नील-कमलके समान श्यामसुन्दर हरि जिनके हृदयमें विराजमान रहते हैं, उन्हींको लाभ होता

%

हैं, उनके दिव्य श्रीअंगकी कान्ति चन्द्रमाके समान गौर है तथा मुखपर सदा प्रसन्नता

है, उन्हींकी विजय होती है। उनकी पराजय कैसे हो सकती है? [स्कन्दपुराण-आवन्यखण्ड]

कल्याण, सौर ज्येष्ठ, वि० सं० २०७५, श्रीकृष्ण-सं० ५२४४, मई २०१८ ई० विषय-सूची		
१- शुक्लाम्बर शशिवर्ण भगवान् विष्णुका ध्यान	१७- सत्यका स्वरूप (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्द १८- दयालु दीनबन्धुके बड़े विशाल हाथ हे (श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट) १९- संस्कृति की दो धाराएँ [पर्यावरण-चिः (श्रीनन्दलालजी टाँटिया) २०- मेरे माँझी! (श्रीइन्दरचन्दजी तिवारी) २१- भारतीय संस्कृतिमें पशु-पिक्षयोंका मह (श्रीइन्द्रलालजी शास्त्री विद्यालंकार) २२- जो तोकों काँटा बुवै, ताहि बोइ तू फूर २३- लक्ष्मी कहाँ रहती हैं? (धर्मभूषण पं० श्रीमुकुटविहारीलालजी २४- भगवान् नारायणका भजन ही सार है २५- सिद्धावधूत श्रीदयालदास स्वामी २६- संतोंके लक्षण २७- 'गोषु पाप्मा न विद्यते' [कहानी] (श्रीस् २८- गौ-मिहमा २९- साधनोपयोगी पत्र ३०- व्रतोत्सव-पर्व [ज्येष्ठमासके व्रत-पर्व] ३१- कृपानुभूति	हैं [एक सत्य घटना]
(डॉ॰ श्रीगार्गीशरण मिश्रजी 'मराल')२१	३३- मनन करने योग्य ९	
१- शेषावतार भगवान् बलराम	<i>''</i>) करंगा)	मुख-पृष
	य । सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय ॥	
्र २५० विदेशमें Air Mail वार्षिक U	प्र। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥ ते। गौरीपति जय रमापते॥ S\$ 50 (₹3000) {Us Cheque Collection S\$ 250 (₹15000) {Charges 6\$ Extra	पंचवर्षीय शुल्क ₹१२५०
आदिसम्पादक — नित्यलीलाली न	द्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका । भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार हसम्पादक—डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़ के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित	तथा प्रकाशित
	yan@gitapress.org 092	35400242/244

संख्या ५ ी कल्याण होंगे और तदनुसार ही निर्णय होगा और जिस निर्णयमें याद रखो — तभीतक तुम्हारा निर्णय भ्रमपूर्ण, परहित भरा है, उस निर्णयसे परिणाममें अपना अहित संदिग्ध और परिणाममें हानिकारक होता है, जबतक कि तुम्हारे मनमें काम, क्रोध, लोभ, स्वार्थ, घृणा, द्वेष, कभी हो ही नहीं सकता। अभिमान, भय, प्रतिशोधकी भावना, बैर और हिंसादि याद रखो — जब मनुष्यके हृदयमें भगवत्प्रेमका दोष वर्तमान हैं और भगवानुकी दिव्य वाणीकी प्रादुर्भाव होता है, तब उसको जगतुमें कोई पराया स्फ़रणाके लिये खुला मार्ग नहीं है। दीखता ही नहीं। ऐसी अवस्थामें उसका स्वार्थ भी याद रखो-जब तुम मनको इन दोषोंसे मुक्तकर विस्तृत हो जाता है। फिर वह जगतुके भलेमें ही अपना भगवानुकी कृपाके प्रकाशसे भर लोगे और शुद्ध भला देखता है, किसी एक क्षुद्र प्राणीका अहित भी उसे भगवदीय विचार, जिनमें आगे-पीछे सर्वत्र पर-हितकी सहन नहीं होता। इस प्रकारके प्रेमका प्रकाश स्वार्थके अन्धकारको सर्वथा नष्ट कर देता है। फिर उस प्रकाशमें भावना भरी होगी, तुम्हारे मनको छा लेंगे, तब तुम्हारा जो कुछ भी निर्णय होगा, वह निर्भ्रान्त सत्य और जो कुछ निर्णय होता है, वह सर्वथा मंगलमय होता है। परिणाममें हितकारक होगा। याद रखो — जब तुम भगवान्की इच्छामें अपनी इच्छा मिला दोगे, तभी तुम्हारा निर्णय निष्पक्ष निर्भान्त

याद रखों — व्यक्तिगत स्वार्थ मनुष्यके ज्ञानको इच्छा हरकर उसे अन्धा बना देता है, फिर उसकी बुद्धिपर होगा। पर्दा पड़ जानेके कारण वह यथार्थ निर्णय नहीं कर सकता। जो बुद्धि स्वार्थसे ढकी नहीं होती, उसीके द्वारा रखनेव भगवान्के ज्ञानका प्रकाश होता है। पदपर याद रखों — जिस हृदयमें नित्य-निरन्तर भगवान करना

त्याग, क्षमा, वैराग्य, नि:स्वार्थभाव, प्रेम, सहृदयता, विनय, निर्भयता, सिहष्णुता, स्नेह और अहिंसा आदि— स्वाभाविक ही रहते हैं और वहींसे भगवान्की दिव्य वाणी स्फुरित हुआ करती है।

विराजित रहते हैं, उस हृदयमें दैवीसम्पत्तिके गुण-

याद रखों — जब तुम्हारा मन भगवदीय सत्यको प्राप्त करनेके लिये उत्सुक तथा उन्मुक्त होगा, तब उसमें स्वयं ही उस सत्यका प्रकाश होगा और तब जो कुछ निर्णय होगा, वह सत्य ही होगा। याद रखों—भगवान्की इच्छासे विरुद्ध इच्छा रखनेवालेकी इच्छा कभी सफल तो होती ही नहीं, पद-पदपर उसे असफलता, निराशा और वेदनाका सामना करना पड़ता है। उसका प्रत्येक निश्चय, प्रत्येक विचार भ्रान्त और परिणाममें पीडादायक होता है तथा उसका

याद रखों - तुम यदि अपनेको भगवान्के प्रति

मिला देते हो एवं अपने ज्ञान और बलको भगवान्के ज्ञान और बलका अंश मान लेते हो तो निश्चय समझो फिर तुम भगवान्की मंगलमयी इच्छासे मंगलमय बनकर, भगवान्के नित्य सत्य ज्ञान और अचिन्त्य

सौंप देते हो, अपनी इच्छाओंको भगवानुकी इच्छामें

कुछ निर्णय होगा, वह सत्य ही होगा। अपरिमित बलसे सुरिक्षित होकर केवल अपना ही याद रखो—जब तुम्हारे हृदयमें दूसरोंका हित कल्याण नहीं करोगे; तुम्हारा प्रत्येक विचार, तुम्हारा ही अपने हितके रूपमें प्रकट होगा, तब उसमें प्रत्येक निश्चय और तुम्हारी प्रत्येक क्रिया अखिल स्वाभाविक वही विचार आयेंगे, जो पर-हितकारक जगत्का मंगल करनेवाली होगी। 'शिव'

जीवन नित्य अशान्तिमें ही बीतता है।



जब कंसने देवकी-वसुदेवके छ: पुत्रोंको मार डाला, तब देवकीके गर्भमें भगवान् बलराम पधारे। योगमायाने उन्हें आकर्षित करके नन्दबाबाके यहाँ निवास कर रही श्रीरोहिणीजीके गर्भमें पहुँचा दिया। इसीलिये उनका एक नाम संकर्षण पडा। बलवानोंमें श्रेष्ठ होनेके कारण उन्हें बलभद्र भी कहा जाता है। श्रीकृष्ण-बलराम परस्पर अभिन्न हैं । उनकी लीलाएँ भी एक-दूसरेसे संयुक्त हैं। श्रीमद्भागवतमें बहुत कम लीलाएँ ऐसी हैं, जहाँ श्रीकृष्णके साथ उनके अग्रज श्रीबलराम नहीं रहे हैं।गोकुल और वृन्दावनकी लीलाओं में भी प्राय: श्रीकृष्ण-बलराम साथ-साथ ही रहे हैं। एक दिन जब बलराम और श्रीकृष्ण ग्वालबालोंके साथ वनमें गौएँ चरा रहे थे, तब ग्वालके वेषमें प्रलम्ब नामक एक असूर

फिर भी वे उसकी मित्रताका प्रस्ताव स्वीकार करके उसे

खेलमें सम्मिलित कर लिये। प्रलम्बासुरने देखा कि श्रीकृष्णको

हराना कठिन है। इसलिये वह बलरामजीको अपनी पीठपर

बैठाकर भाग चला। बलरामजी साक्षात् शेषावतार थे।

उन्होंने देखा कि यह असुर मुझे आकाश-मार्गसे लिये जा

साधुवाद देते हुए उनपर आकाशसे पुष्पवृष्टि करने लगे। आया। उसकी इच्छा श्रीकृष्ण और बलरामका अपहरण करनेकी थी। भगवान् श्रीकृष्ण उसे देखते ही पहचान गये।

यह घटना बलरामजीके अतुलित शौर्यकी साक्षी है। बलरामजी बचपनसे ही अत्यन्त गम्भीर और शान्त थे। श्रीकृष्ण उनका विशेष सम्मान करते थे। बलरामजी भी श्रीकृष्णकी इच्छाका सदैव ध्यान रखते थे। व्रजलीलामें शंखचूड्का वध करके श्रीकृष्णने उसका शिरोरल बलराम भैयाको उपहारस्वरूप प्रदान किया। कंसकी मल्लशालामें श्रीकृष्णने चाणूरको पछाडा तो मुष्टिक बलरामजीके मुष्टिप्रहारसे स्वर्ग सिधारा। जरासन्धको बलरामजी ही अपने योग्य प्रतिद्वन्द्वी जान पडे। यदि श्रीकृष्णने मना नहीं किया होता तो बलरामजी प्रथम आक्रमणमें ही उसे यमलोक भेज देते। बलरामजीका विवाह रेवतीसे हुआ था। वे सत्ययुग-कालकी कन्या थीं और आकारमें द्वापरके बलरामजीसे काफी लम्बी थीं। छोटे भाई श्रीकृष्णको परिहास करते देखकर उन्होंने रेवतीजीको अपने अनुरूप कर लिया। रुक्मिणी-हरणमें शिशुपाल तथा उसके साथी अपने सैन्यसमूहके साथ बलरामजीके द्वारा ही पराजित हुए। श्रीकृष्णके पुत्र साम्बने जब दुर्योधनकी कन्या लक्ष्मणाका हरण किया, तब छ: महारथियोंने एक साथ मिलकर उन्हें बन्दी बना लिया। उस समय बलरामजी अकेले ही हस्तिनापुर पहुँच गये। यदि दुर्योधन लक्ष्मणाका साम्बसे विवाह करनेके लिये तैयार न होता तो बलरामजी पूरे हस्तिनापुरको अपने हलसे खींचकर यमुनाजीमें डुबा देते। नैमिष-क्षेत्रमें बलरामजीने इल्वल राक्षसके पुत्र बल्वलको मारकर ऋषियोंको भयमुक्त किया। महाभारतके युद्धमें बलरामजी तटस्थ होकर तीर्थयात्राके लिये चले गये। यदुवंशके उपसंहारके बाद उन्होंने समुद्रतटपर आसन लगाकर अपनी लीलाका संवरण किया। श्रीमद्भागवतकी कथाएँ रत्ता।तैduरिङ्का क्रान्धेंतेoक्सञ्चेeिप्रकारास्त्रहः ग्रॅस्ट लकुक्ततावरोगाङ्गतार।जात्राण संजीवन विकास विकास स

जमाया। बलरामजीके वज्रके समान प्रहारसे प्रलम्बास्रका सिर चूर-चूर हो गया। वह अत्यन्त भयंकर शब्द करता हुआ प्राणहीन होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। प्रलम्बासुर मूर्तिमान् पाप था। उसकी मृत्युसे देवता प्रसन्न हो गये। वे बलरामजीको

परमात्माकी प्राप्तिके लिये निराश नहीं होना चाहिये संख्या ५] परमात्माकी प्राप्तिके लिये निराश नहीं होना चाहिये (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) बहुत-से भाई परमात्माकी प्राप्तिके लिये यथासाध्य सम्पूर्ण पाप-समुद्रसे भलीभाँति तर जायगा। साधन करते हैं, पर बहुत समयतक साधन करनेपर भी अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्। जब परमात्माकी प्राप्ति नहीं होती, तब निराश हो जाते साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥ हैं, पर वे सज्जन निराश न होकर यदि परमात्माकी प्राप्ति न होनेका कारण खोजें तो उन्हें पता लगेगा कि श्रद्धा, यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्य भावसे मेरा प्रेम तथा आदरपूर्वक और तत्परताके साथ साधन न भक्त होकर मुझको भजता है तो वह साधु ही मानने-योग्य है: क्योंकि वह यथार्थ निश्चयवाला है अर्थात् करना ही इसमें प्रधान कारण है। जिस प्रकार लोभी मनुष्य धनकी प्राप्तिके लिये पूरी तत्परताके साथ प्रयत्न उसने भलीभाँति निश्चय कर लिया है कि परमात्माके करता है, अपना सारा समय, समस्त बुद्धिकौशल धनकी भजनके समान अन्य कुछ भी नहीं है। प्राप्तिके प्रयत्नमें ही लगाता है तथा नित्य सावधानीके क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति। साथ ऐसा कोई भी काम नहीं करता, जिससे धनकी कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥ तिनक भी क्षिति हो। इसी प्रकार यदि श्रद्धा, प्रेम तथा (गीता ९।३१) आदरके साथ पूर्ण तत्परतासे साधन किया जाय तो इस वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और सदा युगमें परमात्माकी प्राप्ति बहुत शीघ्र हो सकती है। रहनेवाली परम शान्तिको प्राप्त होता है। हे अर्जुन! तू आत्माके उद्धार या परमात्माकी प्राप्तिमें अबतक निश्चयपूर्वक सत्य जान कि मेरा भक्त नष्ट नहीं होता है। जो विलम्ब हुआ, उसे देखकर कभी निराश नहीं होना उस यथार्थ ज्ञानकी प्राप्ति भी ईश्वर, महात्मा, चाहिये वरन् भगवान्के विविध आश्वासनोंपर ध्यान परलोक और शास्त्रपर विश्वास होनेसे सहज ही हो देकर विशेषरूपसे साधनमें प्रवृत्त होना चाहिये। भगवानुने सकती है। गीतामें भगवानुने बतलाया है— कहा है कि यदि मरते समय भी मनुष्य मेरा स्मरण कर श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः। ले तो उसे मेरी प्राप्ति हो सकती है-ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति॥ अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्। (गीता ४। ३९) जितेन्द्रिय, साधनपरायण और श्रद्धावान् मनुष्य यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥ ज्ञानको प्राप्त होता है तथा ज्ञानको प्राप्त होकर वह (गीता ८।५) 'जो पुरुष अन्तकालमें भी मुझ (भगवान्)-को ही बिना विलम्बके-तत्काल ही भगवत्प्राप्तिरूप परम शान्तिको स्मरण करता हुआ शरीरको त्यागकर जाता है, वह मेरे प्राप्त हो जाता है। साक्षात् स्वरूपको प्राप्त कर लेता है—इसमें कुछ भी जो मनुष्य ध्यानयोग, ज्ञानयोग, कर्मयोग आदि संशय नहीं है।' कुछ भी नहीं जानता, ऐसे अविवेकी मनुष्यका भी पापी-से-पापीका तथा मूर्ख-से-मूर्खका भी उद्धार सत्पुरुषोंका संग करके उनके आज्ञानुसार साधन करनेपर परमात्माके यथार्थ ज्ञानसे और परमात्माकी भक्तिसे शीघ्र उद्धार हो सकता है। भगवान् कहते हैं-हो सकता है। भगवान् कहते हैं-अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वान्येभ्य उपासते। अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः। तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः॥ सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं सन्तरिष्यसि॥ (गीता १३।२५) परंतु इनसे दूसरे अर्थात् जो मन्द बुद्धिवाले पुरुष (गीता ४। ३६) यदि तू अन्य सब पापियोंसे भी अधिक पाप हैं, वे इस प्रकार न जानते हुए दूसरोंसे अर्थात् तत्त्वके करनेवाला है, तो भी तू ज्ञानरूप नौकाद्वारा नि:सन्देह जाननेवाले पुरुषोंसे सुनकर ही तदनुसार उपासना करते

भाग ९२ हैं और वे श्रवणपरायण पुरुष भी मृत्युरूप संसार-जाता है और प्रेम होनेपर भगवानुकी प्राप्ति हो जाती है। सागरको नि:सन्देह तर जाते हैं। श्रीरामचरितमानसमें भगवान् शिवजी कहते हैं-अतएव परमात्माकी प्राप्तिके न होनेमें श्रद्धा और हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥ आदरपूर्वक तत्परताके साथ साधन न करना ही मुख्य जहाँ प्रेम होता है, वहाँ चित्तकी वृत्ति लग जाती कारण है। अत: हमें श्रद्धा और आदरपूर्वक तत्परताके है, जिन-जिन विषयोंमें प्रेम होता है, उन-उनमें चित्त साथ साधन करना चाहिये। भगवान् गीतामें कहते हैं-स्वाभाविक संलग्न हो जाता है। अत: जब भगवान्में तं विद्याद् दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम्। प्रेम हो जायगा तो चित्त भगवानुमें स्वतः ही लग जायगा। इसलिये संसारसे वैराग्य और भगवान्से प्रेम स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा॥ जो दु:खरूप संसारके संयोगसे रहित है तथा करनेके लिये विशेष चेष्टा करनी चाहिये। संसार और जिसका नाम योग है, उसको जानना चाहिये। वह योग विषयोंमें दोषबुद्धि, अनित्यबुद्धि तथा त्याज्यबुद्धि करनेसे न उकताये हुए अर्थात् धैर्य और उत्साहयुक्त चित्तसे वैराग्य होता है तथा भगवानुके नाम, रूप आदिके महान् निश्चयपूर्वक करना कर्तव्य है। गुण, प्रभावको समझनेसे उनमें प्रेम होता है। हमको कभी निराश नहीं होना चाहिये। निराशासे कलिकालमें तो भगवान्की प्राप्ति बहुत ही सुगमतासे हानिके अतिरिक्त कोई भी लाभ नहीं है। हमारे परम सुहुद् और शीघ्रतासे हो सकती है। श्रीवेदव्यासजीने कहा है— भगवानुका वरद हस्त जब सदा हमारे सिरपर है, तब हम यत्कृते दशभिवंधेंस्त्रेतायां हायनेन तत्। निराश क्यों हों। भगवान्ने स्वयं आश्वासन दिया है कि द्वापरे तच्च मासेन ह्यहोरात्रेण तत्कलौ॥ जो प्रेमपूर्वक मुझे भजता है, उसे मैं स्वयं ज्ञान देता हूँ— जो फल सत्ययुगमें दस वर्ष तपस्या आदि करनेसे तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्। मिलता है, उसे मनुष्य त्रेतामें एक वर्ष, द्वापरमें एक मास ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥ और कलियुगमें एक दिन-रातमें प्राप्त कर लेता है। उन निरन्तर मेरे ध्यान आदिमें लगे हुए और ध्यायन् कृते यजन् यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन्। प्रेमपूर्वक भजनेवाले भक्तोंको मैं वह तत्त्वज्ञानरूप योग यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम्॥ देता हूँ, जिससे वे मुझको ही प्राप्त होते हैं— जो फल सतयुगमें ध्यानसे, त्रेतामें यज्ञसे और द्वापरमें देवपुजासे प्राप्त होता है—वही कलियुगमें केशवका तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं नाम-कीर्तन करनेसे मिल जाता है। नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता॥ हे अर्जुन! उनके ऊपर अनुग्रह करनेके लिये उनके महामुनि पराशरजी कहते हैं-अन्त:करणमें स्थित हुआ मैं स्वयं ही उनके अज्ञानजनित अत्यन्तदुष्टस्य कलेरयमेको महान् गुणः। अन्धकारको प्रकाशमय तत्त्वज्ञानरूप दीपकके द्वारा नष्ट कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तबन्धः परं व्रजेत्॥ कर देता हूँ। इस अत्यन्त दुष्ट कलियुगमें यही एक महान् गुण है कि इस युगमें केवल भगवान् श्रीकृष्णका नाम-संकीर्तन हमारा तो केवल इतना ही काम है कि हम नित्य करनेसे ही मनुष्य परम पदको प्राप्त कर लेता है। निरन्तर भगवान्को केवल याद रखें। भगवान्का नित्य-निरन्तर स्मरण रखनेसे भगवान्की प्राप्ति सुगमतासे हो श्रीतुलसीदासजीने भी कहा है— जाती है। भगवानुने कहा है— कलिजुग सम जुग आन नहिं जौं नर कर बिस्वास। हे अर्जुन! जो पुरुष मुझमें अनन्यचित्त होकर सदा गाइ राम गुन गन बिमल भव तर बिनहिं प्रयास॥

अतएव कभी निराश न होकर तत्परताके साथ हर

समय श्रद्धा-प्रेमपूर्वक भगवान्को याद रखते हुए उनकी

उपासना करनी चाहिये। ऐसा करनेपर भगवान्की प्राप्ति

शीघ्र होनेमें कोई सन्देह नहीं है।

ही निरन्तर मुझ पुरुषोत्तमको स्मरण करता है, उस

नित्य-निरन्तर मुझमें युक्त हुए योगीके लिये मैं सुलभ हूँ

नित्य-निरन्तर स्मरण करनेसे भगवान्में प्रेम हो

अर्थात् सहज ही प्राप्त हो जाता हूँ।

विचारोंपर नियन्त्रण संख्या ५] विचारोंपर नियन्त्रण (पं० श्रीलालजीरामजी शुक्ल, एम०ए०, बी०टी०) मनुष्यके विचार ही उसे दुखी और सुखी बनाते हैं। दु:खदायी विचारके मनमें उठ जानेपर सब प्रकारके जिस मनुष्यके विचार उसके नियन्त्रणमें हैं, वह सुखी प्रयत्न करनेपर भी वह मनसे बाहर नहीं जाता। कितने है; और जिसके विचार उसके नियन्त्रणमें नहीं हैं, वह ही लोग अपने विचारोंसे ही परेशान रहते हैं। वे अपने सदा दुखी रहता है। दुखी मनुष्य दु:खका कारण अपने-अभद्रको मनसे निकालना चाहते हैं; पर जैसे-जैसे अभद्र आपको न जानकर किसी बाह्य पदार्थको मान लेता है। विचारको मनसे निकालनेकी चेष्टा की जाती है, वह इस प्रकारकी मानसिक क्रियाको आधुनिक मनोविज्ञानमें और भी प्रबल होता जाता है। ऐसी अवस्थामें कभी-आरोपणकी क्रिया कहते हैं। इसी प्रकार कोई अपने कभी मनुष्यको विक्षिप्तता आ जाती है। शत्रुओंको, कोई मित्रों और सम्बन्धियोंको और कोई इस प्रकारको स्थिति मानसिक दुर्बलताका परिणाम भाग्यको ही कोसा करते हैं। वे अपनी ओर नहीं देखते। होती है। यह मानसिक कमजोरी बार-बार आवेशात्मक आत्मनिरीक्षण करनेवाला व्यक्ति शीघ्र ही इस निष्कर्षपर विचारोंको मनमें आने देनेसे उत्पन्न होती है। सब समय आ जाता है कि हमारे विचार ही हमारे शत्रु, मित्र, विचारोंका नियन्त्रण करनेकी चेष्टा करनेसे मनुष्यकी सम्बन्धी अथवा भाग्य हैं। जिस मनुष्यके विचार उसके इच्छाशक्ति इतनी बलवान् हो जाती है कि कोई भी बुरा अनुकूल हैं, वह सभी प्रकारके लोगों, परिस्थितियों और विचार मनमें इच्छाशक्तिके विरुद्ध देरतक नहीं ठहर भाग्यको अपने अनुकूल पाता है। इसके प्रतिकूल जिस पाता। जो मनुष्य आवेशात्मक विचारके ऊपर जितना ही व्यक्तिके विचार उसके प्रतिकूल होते हैं, वह अपने चारों अधिक नियन्त्रण रखता है, वह अपनी इच्छाशक्तिको उतना ही बली बना लेता है। एडवर्ड कारपेंटर महाशयका ओर शत्रु-ही-शत्रु देखता है। विचारोंके दूषित होनेपर वातावरण दूषित हो जाता है और मित्र भी शत्रु बन जाते कथन है कि किसी विचारको पहले ही क्षणभर मार हैं। सफलता विफलतामें परिणत हो जाती है। डालो; फिर उससे जो तुम करना चाहते हो; कर सकते विचारोंको अनुकूल बनाना ही पुरुषार्थ है। विचार हो। जिस मनुष्यको आवेशोंको रोकनेकी आदत पड़ अभ्याससे अनुकूल अथवा प्रतिकूल होते हैं। जो मनुष्य जाती है, उसे किसी प्रकारके बुरे विचार नहीं सताते। जिस प्रकारके विचारोंका अभ्यासी हो जाता है, उसे उसी मनुष्यका सहज स्वभाव पाशविक प्रवृत्तियोंमें रमण प्रकारके विचार मनमें बार-बार आते हैं। सांसारिक करनेका है। जिस समय हम कोई समाजोपयोगी काम बातोंका चिन्तन करनेवाले व्यक्तिके मनमें सांसारिक नहीं करते, उस समय पाशविक प्रवृत्तियोंकी सन्तुष्टिमें विचार आते रहते हैं, उसे इसी प्रकारके विचारोंमें रस लग जाते हैं। इन प्रवृत्तियोंके उत्तेजित होनेपर अनेक मिलता है। यदि कहीं ज्ञान-चर्चा होती है तो ऐसा व्यक्ति प्रकारके प्रबल विचार मनमें आने लगते हैं। अतएव सदैव किसी भलाईके काममें अपने-आपको लगाये उसे रसहीन देखता है। सांसारिक लोगोंको ज्ञान-चर्चाके समय जल्दीसे नींद आ जाती है। ज्ञान-चर्चा मनुष्यकी रखना बुरे विचारोंके नियन्त्रणके लिये अत्यन्त आवश्यक इच्छाओंके ऊपर नियन्त्रण करती है, वह उनकी तृप्ति है। जब भी मन स्वतन्त्र होता है, वह स्वभावत: या तो नहीं करती। अतएव इस प्रकारकी चर्चामें आनन्दकी किसी काम्य वस्तुकी प्राप्तिकी योजना बनाने लगता है

अनुभूति करना एक अस्वाभाविक-सी बात होती है। विचारोंपर नियन्त्रण धीरे-धीरे आता है। प्रत्येक

आवेशात्मक विचार मनको निर्बल बनाता है और निर्बल

मन बुरे विचारोंके नियन्त्रणमें असमर्थ रहता है। जब

मनुष्यका मन निर्बल हो जाता है तो किसी भी प्रकारके

अथवा वह किसी व्यक्तिके प्रति ईर्ष्या और प्रतिकारकी बातें सोचने लगता है। अतएव आत्मनियन्त्रणका एक सुन्दर उपाय सुचारु रूपसे किसी भी सामाजिक कार्यमें लग जाना है। यही कर्मयोगका आध्यात्मिक और

मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त है।

जीवकी तृप्ति कैसे हो ? (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) जीव सदा ही अतृप्त है। साधारण कीट-पतंगसे लोगोंमें भी कोई बिरला ही शेषतक अपने लक्ष्यपर स्थिर लेकर बड़े-बड़े सम्राट्तक सभी किसी-न-किसी अभावका रह सकता है। अधिकतर लोग तो अपने मतको सर्वश्रेष्ठ अनुभवकर सदा दुखी रहते हैं। कोई कितनी भी मानकर दूसरोंकी निन्दा करने लगते हैं और दलबन्दीमें सांसारिक सम्पत्तिका या कितने ही उच्च पदका अधिकारी पड़कर लक्ष्यभ्रष्ट हो अपने ईश्वरका आप ही अपमान क्यों न हो, अपनी स्थितिसे सन्तुष्ट नहीं है, उसके हृदयमें कर बैठते हैं। अपने साधन-पथको सर्वश्रेष्ठ समझना किसी वस्तुकी कमी सदा खटकती है—वह कुछ और बुरा नहीं है। साधकके लिये तो यह आवश्यक भी है, चाहता है। बड़े-बड़े देवताओंकी भी यही दशा सुनी परंतु दूसरेको हीन समझना बहुत बुरा है। आज दुनियामें जाती है। जो इतने अधिक मत-मतान्तर और उनमें परस्पर विवाद, जहाँ अतृप्ति है, अभावकी वेदना है, वहीं चित्त द्वेष, द्रोह वर्तमान हैं, इसका प्रधान कारण यही है; नहीं चंचल और अशान्त है; जिसका चित्त अशान्त है, वही तो, जब ईश्वर एक है, वही एक सृष्टिका रचयिता है, दुखी है; क्योंकि 'अशान्तस्य कुत: सुखम्।' (गीता सम्पूर्ण जगत् उसीसे उत्पन्न है, वही एक सबका पालन करता है, तब आपसमें लड़नेका क्या कारण? एक ही २।६६) यह अतृप्ति तबतक नहीं मिट सकती, जबतक कि पिताकी संतान होकर एक-दूसरेको हीन बतलानेका क्या जीव किसी ऐसी परम वस्तुको न प्राप्त कर ले, जिसकी कारण ? कारण यही कि अपने-अपने अज्ञानसे उस एककी सत्तासे समस्त अभावोंका सर्वथा अभाव हो जाता है— जगह अनेक ईश्वरोंकी सृष्टिकर अपने ईश्वरको छोटा जो सर्वथा पूर्ण हो। विवेकबुद्धि बतलाती है कि ऐसी बना लिया है। ईश्वरकी व्यापकताको वे भूल गये हैं। परम वस्तु एक परमात्मा ही है, जो सदा एकरस रहता हिन्दुओंमें शैव, वैष्णव, शाक्त, गाणपत्य, सौर, वेदान्ती, बौद्ध, जैन, सिख आदि अनेक मत हैं। इनमें

ह जीराविपांत्रक्षा हिंद्रव्यस्य केशारिक अस्तिरहार के अस्

सत्तासे समस्त अभावोंका सर्वथा अभाव हो जाता है— जो सर्वथा पूर्ण हो। विवेकबुद्धि बतलाती है कि ऐसी परम वस्तु एक परमात्मा ही है, जो सदा एकरस रहता है, उसके सिवा अन्य सभी वस्तुएँ किसी-न-किसी अभावसे युक्त एवं परिणाममें विनाशी हैं और प्रतिक्षण विनाशकी ओर अग्रसर हो रही हैं। ऐसी विनाशशील अपूर्ण वस्तुओंसे जीवका पूर्णकाम होना कभी सम्भव नहीं। इसलिये जीव नित्य अतृप्त है और वह संसारकी सभी वस्तुओंको 'यह भी वह नहीं है', 'इसमें भी वह नहीं है', यों 'नेति-नेति' कहता हुआ उनमें अपनी इच्छित वस्तु न पाकर स्वभावसे ही उस अभावरहित नित्य वस्तुकी ओर अग्रसर हो रहा है। इतना होनेपर भी कभी-कभी भ्रमवश जीव सांसारिक

पदार्थोंमें सुखकी कल्पनाकर अपने लक्ष्यको भूल जाता

है। ऐसे मनुष्य बहुत ही थोड़े हैं, जो नचिकेता और

प्रह्लादकी भाँति जगत्के समस्त प्रलोभनोंको पददलितकर

पूर्णकी प्राप्तिके लिये बद्धपरिकर हो चुके हों। हजारोंमेंसे

कोई एक इस प्रकार प्रयत्न करना चाहता है, वैसे

वदान्ता, बाद्ध, जन, सिख आदि अनक मत है। इनम भी भिन्न-भिन्न आचार्योंके अनुसार भिन्न-भिन्न अनेक सम्प्रदाय हैं। हिन्दुओंके अतिरिक्त, ईसाई, यहूदी, पारसी आदि अनेक मत हैं। प्रत्यक्ष या परोक्षभावसे प्राय: सभी ईश्वरको मानते हैं। देश, काल, प्रकृति, रुचि और अधिकार आदिके भेदसे मतोंसे, उनके बाहरी व्यवहारोंमें तथा उनकी उपासनापद्धतिमें भेद रहना आश्चर्यकी बात

नहीं है। यहाँ हमें किसी मतसे विरोध नहीं है, सभी मत

रहें, अपनी-अपनी प्रकृतिके अनुसार चलते रहें; परंतु यह

विवेक सबमें सर्वदा जाग्रत् रहना चाहिये कि हम सब

भिन्न-भिन्न साधनोंसे उस एक ही परम साध्यकी ओर

बढ़ रहे हैं, जिसको वैष्णव श्रीविष्णु, श्रीराम, श्रीकृष्ण

कहते हैं; शैव शिव, शाक्त दुर्गा, गाणपत्य गणेश, सौर

सूर्य, वेदान्ती ब्रह्म, मुसलमान अल्लाह और ईसाई गॉड

कहते हैं। उस एक ही चरम लक्ष्य-स्थानतक पहुँचनेके

संख्या ५] जीवकी तृष्	त कैसे हो ? ११
**************************************	**************************************
दुर्गमता और अपनी-अपनी गतिके अनुसार आगे-पीछे	और गुणी पुरुष थे। विद्वान्, शुद्ध और सदाचारी होनेके
एक ही जगह पहुँचा देते हैं। किसीमें ऊँच-नीचका भाव	कारण नगरके अनेक श्रद्धालु लोगोंने उनसे दीक्षा ग्रहण
रखना अनुचित है।	की थी। उनके सदाचार और न्यायपरायणतासे सन्तुष्ट
ऐसा न मानकर अपने–अपने ईश्वरको अलग	होकर सरकारने उन्हें मजिस्ट्रेटके अधिकार दे दिये थे।
माननेसे एककी जगह ईश्वर अनेक हो जाते हैं, जिससे	वे बड़े अच्छे कथावाचक थे; प्रतिदिन रातको उनकी
प्रत्येक ईश्वरकी सीमा परिमित हो जाती है। मान	कथा होती थी, जिसमें हजारों नर-नारी सुनने आया
लीजिये, एक साधन धनुर्बाणधारी भगवान् श्रीरामको	करते थे। गरीब किसानों और दीन-दु:खियोंके साथ वे
ईश्वर मानता है, दूसरा वैष्णव बालरूप मुरलीमनोहर	सच्ची सहानुभूति रखते थे, इससे हजारों गरीब उन्हें
श्यामसुन्दरको ईश्वर मानता है, तीसरे मुसलमानके मतसे	अपना रक्षक और पिता-सदृश समझने लगे थे। गाँव,
ईश्वरका रूप अपने भावोंके अनुरूप समझते हैं, चौथे	घर, परिवार सबसे अच्छा बर्ताव होनेके कारण सभी
यूरोपीय सज्जन ईश्वरको अपने रूपानुरूप समझते हैं; पर	अपने–अपने सम्बन्धके अनुसार उनको सम्बोधितकर
ये चारों ही ईश्वरको मानते हैं; उसकी भक्ति करते हैं	उनका सम्मान करते थे। उनकी साध्वी स्त्री पतिकी
और उसे सर्वश्रेष्ठ समझकर उपासना करते हैं। क्या ये	एकान्तभावसे सदा सेवा किया करती थी और शिष्योंके
चारों ही वास्तवमें एक ही ईश्वरकी भक्ति नहीं करते?	द्वारा गुरुभावसे, सरकारी कर्मचारियोंके द्वारा उच्च
जब ईश्वर एक है तो भक्ति उस एककी ही होती, परंतु	अधिकारीभावसे, श्रोताओंके द्वारा पण्डितभावसे, गरीबोंके
दूसरोंके ईश्वरको अपने ही ईश्वरका एक और रूप न	द्वारा रक्षकभावसे और घर-परिवारके लोगोंद्वारा
माननेके कारण उनकी तत्त्वज्ञानशून्य पूजा सर्वव्यापी	सम्बन्धानुसार आत्मीयभावसे, यों भिन्न-भिन्न लोगोंके
ईश्वरकी न होकर सीमाबद्ध अल्पस्थानव्यापीकी होती	द्वारा अपनी-अपनी भावनाके अनुसार भिन्न-भिन्न भावोंसे
है। दूसरोंके ईश्वरको अपने ही ईश्वरका स्वरूप न	अपने ही प्रियतम पतिको पूजित होते देखकर वह बहुत
माननेसे अपना ईश्वर अपनी ही मान्यतातक परिमित रह	प्रसन्न हुआ करती और पतिकी गुणावलीपर मुग्ध होकर
जाता है; क्योंकि दूसरे तो हमारे ईश्वरको नहीं मान	उसमें अपना गौरव समझती थी। किसी भी भावसे
सकते हैं। परिणाममें अपनी ही अल्पज्ञतासे हम अपने	पतिका सम्मान करनेवालोंको वह अपने पतिका प्रेमी
ईश्वरको छोटे-से घेरेमें बन्दकर छोटा बना देते हैं, जो	समझकर सबसे प्रेमपूर्वक सद्व्यवहार किया करती थी।
एक तामसी कार्य ही होता है। धनुर्बाणधारी श्रीरामके	इसी प्रकार—पण्डितकी पत्नीकी भाँति साधकको भी
सच्चे उपासकको अपने भावसे अपने इष्टरूपकी उपासना	ईश्वरके सभी रूपोंको केवल अपने ही आराध्य इष्टदेवकी
करते हुए भी दूसरोंके द्वारा दूसरे रूपकी उपासना होते	सच्ची प्रतिमूर्ति समझकर अपने इष्टरूपकी अपनी भावनाके
देखकर यह समझकर प्रसन्न होना चाहिये कि मेरे	अनुसार ही उपासना करते हुए भी सबका सम्मान और
भगवान् श्रीरामकी कैसी अपार महिमा है कि जो भक्तकी	सबसे प्रेम करना चाहिये।
भावनाके अनुसार कहीं श्यामसुन्दर गोपाल बन जाते हैं	जबतक यह समझ नहीं होती, तभीतक भ्रम है,
तो कहीं जटाजूटधारी शिव बन जाते हैं; कहीं आकाशवत्	झगड़ा है, द्वेष-द्रोह और वैर-विवाद है। इस ज्ञानकी
सर्वव्यापी निरवयव बन जाते हैं तो कहीं अन्य वेशभूषाके	उपलब्धि होते ही सारे झगड़े आप-से-आप निबट जाते
धारण करनेवाले बन जाते हैं। इसी प्रकार अन्यान्य	हैं। सारे गहनोंका अधिष्ठान सोना एक है, केवल
नाम-रूपोंके उपासकको भी मानना चाहिये। वास्तवमें	गहनोंके नाम, रूप और व्यवहारमें भेद है। बर्तनोंका
बात भी यही है।	अधिष्ठान मिट्टी एक है, नाम-रूपकी उपाधिसे व्यवहारमें
एक साध्वी पतिव्रता ब्राह्मणीके पति बड़े विद्वान्	भेद है। इसी प्रकार ईश्वर एक है, नाम-रूपके भेदसे

भिन्न-भिन्न आकारोंमे व्यक्त होती है, उसी प्रकार एक ही इसीलिये हम उस अभावरहित सच्चे सुखसे वंचित अव्यक्त मूर्ति सच्चिदानन्दघन परमात्मासे समस्त जगत् रहकर बारम्बार दु:ख-दावानलमें दग्ध होते हुए मृत्युका परिपूर्ण होनेपर भी साधकोंकी भावनाके अनुसार वह शिकार बनते रहते हैं। यदि हम इस तत्त्वको समझ लें

पारपूण हानपर भा साधकाका भावनाक अनुसार वह शिकार बनत रहत है। याद हम इस तत्त्वका समझ ल सबको भिन्न-भिन्न रूपोंमें दीखता है। भगवान्का कोई कि 'सबके अन्दर एक ही ईश्वर है, सब उस एक-से भी रूप मिथ्या नहीं है। नाम-रूपसे अतीत परमात्मा सभी ही उत्पन्न हैं और उस एक-की ओर ही अविच्छिन्न नाम-रूपोंमें नित्य सुप्रतिष्ठित है। सूत्रमें सूत्रकी मणियोंकी गितसे अग्रसर हो रहे हैं' तो फिर किसीका किसीसे कोई भाँति सबमें वही एक ओत-प्रोत है, उसके सिवा अन्य विरोध न रहे और अपने साधनमें सब सुखी हो रहें। कुछ भी नहीं है। भक्त उसके जिस रूपमें श्रद्धा करता है, सौहार्द और सद्भावका विशुद्ध वातावरण सर्वत्र फैल

बह उसे अपने उसी रूपमें पूर्णता प्राप्त करानेके लिये— जाय।

अपना पूर्ण, सर्वथा अभावरहित, निरावरण मुखकमल- एक ही ईश्वरकी संतान होकर एक-दूसरेको दर्शन करानेके लिये उसी रूपमें उसकी श्रद्धा अचल कर नष्ट-भ्रष्ट करनेकी चेष्टा हमारे अज्ञानको ही प्रकट देता है। भक्तके लाभके लिये ही ऐसा होता है। करती है। भारतवर्षके अध्यात्मवादमें एकत्वका परम खेदकी बात तो यही है कि हमलोग केवल बाहरी तत्त्व निहित है। 'समस्त अनेकतामें एकताका अनुभव बातोंको ही तत्त्व समझकर उन्हींमें लगे रहते हैं, अन्दर करना ही भारतीय धर्मका ध्येय है।' भारतवासियोंको

जगत्में लड़ाइयाँ होती हैं। किसी एक सम्प्रदायविशेषके क्रियारूपमें यह आदर्श रखना चाहिये, जिससे जगत् उस नाम-रूपको ही सब कुछ मानकर अन्य समस्त सम्प्रदायोंके परम शान्ति और सुखके पथपर आरूढ़ हो, उस नित्य साधकोंके नाम-रूपमें तुच्छ बुद्धिकर, सम्पूर्ण साधनोंके तृप्तिकर सुधाका आस्वादनकर सुखी हो सके।

प्रवेश ही नहीं करना चाहते। इसीसे ईश्वरके नामपर

प्रेरक-प्रसंग— दूसरों की तृप्तिमें तृप्ति

कलकत्तेके सुप्रसिद्ध विद्वान् तर्कभूषण बीमार पड़े थे। चिकित्सकने उनकी परिचर्या करनेवालोंको आदेश
दिया—'रोगीको एक बूँद भी जल नहीं देना चाहिये। पानी देते ही उसकी दशा चिन्ताजनक हो जायगी।'

स्वयं अपने ध्येयकी ओर अग्रसर होकर जगत्के सामने

दिया—'रोगीको एक बूँद भी जल नहीं देना चाहिये। पानी देते ही उसकी दशा चिन्ताजनक हो जायगी।' श्रीतर्कभूषणजीको बहुत तीव्र प्यास लगी थी। उन्होंने घरके लोगोंसे कहा—'अबतक मैंने ग्रन्थोंमें पढ़ा है तथा स्वयं दूसरोंको उपदेश किया है कि समस्त प्राणियोंमें एक ही आत्मा है, आज मुझे इसका अपरोक्षानुभव करना है। ब्राह्मणोंको निमन्त्रण देकर यहाँ बुलाओ और उन्हें मेरे सामने शरबत, तरबूजका रस तथा हरे

नारियलका पानी पिलाओ।'

घरके लोगोंने यह व्यवस्था कर दी। ब्राह्मण शरबत या नारियलका पानी पी रहे थे और तर्कभूषणजी अनुभव कर रहे थे—'मैं पी रहा हूँ।' सचमुच उनकी रोगजन्य तृषा इस अनुभवसे शान्त हो गयी।

रामकथाके श्रवणका उद्देश्य संख्या ५] रामकथाके श्रवणका उद्देश्य (मानस-मर्मज्ञ पं० श्रीरामिकंकरजी उपाध्याय) रामकथामें अनेक गुण विद्यमान हैं, पर वस्तुत: सकते, यह ठीक है। इसलिये श्रवण एकाग्र होकर करना रामकथाका उद्देश्य क्या है? वैसे तो मनोरंजनकी दृष्टिसे चाहिये। जब शान्तिपूर्ण समय मिले तब श्रवण किये गये भी रामकथा कही और सुनी जाती है। अगर अन्य विचारोंको पुन: स्मृतिपटलपर लाकर मनन करना चाहिये। मनोरंजनके स्थानपर हम रामकथासे मनोरंजन प्राप्त उसका सारतत्त्व अपनी डायरीमें लिख लेना चाहिये। करते हैं, तो यह कोई निन्दाकी नहीं, प्रशंसाकी ही बात तत्पश्चात् समय-समयपर दोहराते रहना चाहिये और है। गोस्वामीजी स्वयं स्वीकार करते हैं कि एक विषयी चिन्तनके रूपमें आचरणमें लाना चाहिये। व्यक्ति जब कथाको सुनता है तो उसके कानोंको वह उदाहरणके रूपमें गाय-बैल जब घास खाना शुरू बडी प्रिय लगती है, उसके मनको सुख प्राप्त होता है। करते हैं, तब जल्दीसे खाते हैं, फिर विश्रामके समय लेकिन रामकथाका उद्देश्य केवल मनतक ही सीमित खायी हुई घास मुँहमें लाकर एकरस बनाकर चबाकर नहीं है। उसे हम यों कह सकते हैं कि सुननेके मुख्य खाते हैं। इस प्रक्रियाको जुगाली कहते हैं। साधकको रूपसे तीन माध्यम हैं-मन, बुद्धि और चित्त। फिर भी यह प्रक्रिया सीख लेनी चाहिये। इस प्रकारके मनन संसारमें व्यक्ति भी तीन प्रकारके होते हैं—विषयी, और चिन्तन ही मानवके कथा-श्रवणसम्बन्धी उच्च साधक और सिद्ध। विषयी मुख्य रूपसे मनके माध्यमसे साधनामय जीवनके लिये उचित हैं। अत: आजसे ही सुनता है, पर साधक केवल मनका ही प्रयोग नहीं करता, श्रवणके रूपमें जो कुछ ग्रहण किया है, उसे मनन और अपितु उसके साथ अपनी बुद्धिके माध्यमसे रामकथाको चिन्तनके रूपमें चबाकर पचानेका संकल्प करना चाहिये, ग्रहण करता है। और जो सिद्ध व्यक्ति है, उसके लिये अर्थात् आचरणमें लानेका प्रयत्न करना चाहिये। तभी रामकथा केवल मन और बुद्धिका विषय नहीं है, वह श्रवणकी सार्थकता है। गोस्वामीजी कहते हैं-तो चित्तसे रामकथाके साथ एकाकार होकर, तन्मय होकर, तदाकार होकर साक्षात् कथाका ही रूप बन रामचरितमानस एहि नामा। सुनत श्रवन पाइअ बिश्रामा।। जाता है। इस तरह कह सकते हैं कि रामकथा विषयी, (रा०च०मा०१। ३५। ७) साधक और सिद्धके लिये क्रमशः उत्कृष्टसे उत्कृष्टतम यदि हम रामकथा सुनेंगे तो हमको विश्रामकी रूपमें सामने आती है। यदि रामकथाको केवल मनोरंजनके प्राप्ति होगी। कितनी अच्छी बात है। विश्राम प्रदान रूपमें ग्रहण किया जाय तो व्यक्तिको उससे तत्काल करना मानसका परम्परागत सत्य है। आनन्दकी अनुभूति तो होगी, पर उसके जीवनमें मनुष्य कर्म करता है। कर्म करना मनुष्यके लिये समस्याओंका समाधान नहीं होगा। अब ऐसी क्षणिक आवश्यक है। कर्म करनेकी इतनी बाध्यता है कि आनन्दकी अनुभूति तो जितने मनोरंजनके साधन होते हैं, मनुष्य बिना कर्म किये रह नहीं सकता। कर्मके द्वारा उन सबमें होती है, जैसे टी०वी०के सीरियल आदि। मनुष्यको अनेक वस्तुएँ प्राप्त होती हैं, जिनसे वह उतनी देरके लिये व्यक्ति अन्य बातोंको भूलकर मनोरंजनमें सुख प्राप्त करनेकी चेष्टा करता है। पर कर्मके बाद उसे विश्रामकी भी आवश्यकता होती है। विश्राम खो जाता है। पर उस मनोरंजनका वास्तविक लाभ तो तब है, जब वहाँसे उठनेके बाद भी व्यक्ति अस्वस्थताका करनेसे उसे नयी ऊर्जा प्राप्त होती है, उसे पुन: कर्म अनुभव न कर अपने आपको स्वस्थ अनुभव करे। करनेकी शक्ति प्राप्त होती है। जैसे कर्म करनेकी रामकथा श्रवण करनेकी विधि बाध्यता है, उसी प्रकार विश्रामकी भी उतनी ही श्रवण करते समय मनन और चिन्तन नहीं कर आवश्यकता है; क्योंकि विश्रामके बिना जीवनमें सन्तुलन

बना रह पाना असम्भव है। मनुष्यके साथ एक है कि 'पहले आप थोडा विश्राम कीजिये तब आगे समस्या है। विश्रामके लिये जब वह पलंगपर जाता बढ़ियेगा।' पर हनुमान्जी उससे कहते हैं कि-है, तो उस समय शरीर तो विश्राम चाहता है, पर मन राम काजु कीन्हें बिनु मोहि कहाँ बिश्राम॥ उछल-कूद ही मचाते रहना चाहता है। (रा०च०मा० ५।१) मन शरीरसे कहता है कि तुम थक गये होगे, पर बिना श्रीरामका कार्य किये कहीं विश्राम है क्या? में तो अभी चलना चाहता हूँ। नींद आ जानेपर भी मन इसका मानो संकेत यही है कि दस-बीस किलो सोनेकी सपनोंकी रचनाएँ करता रहता है। सपने मनकी ही बात क्या? सोनेका पहाड भी व्यक्तिको विश्राम नहीं दे क्रियाशीलताके कारण दिखायी देते हैं। सकता। केवल भगवान्के कार्यके द्वारा ही विश्राम और मनका यह स्वभाव भले ही हो, पर यह भी सत्य है शान्ति सम्भव है। कि जबतक मनमें विश्राम उत्पन्न न हो, तबतक जीवनमें आगे चलकर वर्णन आता है कि भगवान् राम धन्यता नहीं आयेगी। मनको विश्राम कैसे मिलेगा? हनुमान्जीको बीचमें भी विश्राम दिला देते हैं। गोस्वामीजी कहते हैं कि 'मानस' से विश्राम ही नहीं, सीताजीके पास पहुँचनेसे पूर्व हनुमान्जीका विभीषणजीसे वार्तालाप होता है। हनुमान्जी उन्हें परम विश्राम मिलता है। यह गोस्वामीजीका 'स्वयं' का भगवान् रामकी कथा सुनाते हैं, जिसे विभीषण आनन्दपूर्वक अनुभव है। इस अनुभवको हम भी जीवनमें सार्थक कर सकते हैं। रात्रिमें सोनेसे पहले यदि हम आधा घण्टा सुनते हैं। इस कथाके सुनने, कहनेका फल क्या होता मानसका पाठ करके सोयें तो हमारे शरीर एवं मनको परम है, यह बताते हुए गोस्वामीजी कहते हैं-विश्राम मिलेगा। इस अनुभवकी अनुभृति करें। जब एहि बिधि कहत राम गुन ग्रामा। पावा अनिर्बाच्य बिश्रामा॥ बिस्तरपर सोने जायँ तो अपने तिकयेपर अँगुलीसे 'राम' (रा०च०मा० ५।८।२) शब्द लिख लें और ऐसी कल्पना करें कि हम अपना सिर हनुमानुजीको विश्राम मिल गया और उनकी सारी भगवान् रामकी गोदमें रखकर सो रहे हैं। थकान मिट गयी। इसका अर्थ है कि भगवान् रामकी सुन्दरकाण्डमें यही सन्देश प्राप्त होता है। जब कथा विश्राम देनेवाली है। मानसका उद्देश्य यह बताना हनुमानुजी सीतामाताकी खोजमें जाते हैं तो इस यात्राके है कि हम जीवनमें जो भी कार्य करते हैं, परिश्रम करते हैं, वे सब करते रहें, पर जब विश्राम एवं शान्ति पाना प्रारम्भमें ही उनके सामने सोनेका पहाड आ जाता है। चाहते हैं तो रामकथा में डूब जायँ। रामकथासे परम सोना बड़ा मूल्यवान् होता है। व्यक्तिके मनमें सोनेके प्रति बड़ा आकर्षण होता है और वह उसे पाना चाहता है। विश्राम एवं शान्तिकी अनुभूति होगी। समुद्रमें रहनेवाला स्वर्णपर्वत मैनाक हनुमान्जीसे कहता [प्रेषक—श्रीअमृतलालजी गुप्ता] रामकथाकी महिमा रामकथा सुर धेनु सम सेवत सब सुख दानि। सत समाज सुर लोक सब को न सुनै अस जानि॥ सुंदर कर तारी। संसय बिहग उड़ावनिहारी॥ रामकथा कलि बिटप कुठारी। सादर सुनु गिरिराजकुमारी॥ [भगवान् शंकर पार्वतीजीसे कहते हैं —] श्रीरामचन्द्रजीकी कथा कामधेनुके समान सेवा करनेसे सब सुखोंको देनेवाली है और सत्पुरुषोंके समाज ही सब देवताओंके लोक हैं, ऐसा जानकर इसे कौन न सुनेगा! श्रीरामचन्द्रजीकी कथा हाथकी सुन्दर ताली है, जो सन्देहरूपी पक्षियोंको उड़ा देती है। फिर रामकथा क्तियमङ्गी त्रञ्चरोत्रङ्गेरेलिसेम्बङ्गिरहि.हैं। हैं अतिमिसिङ्ग प्राप्ति क्रिप्ति भारति क्रिक्न हिप्ति स्वाप्त

[भाग ९२

निष्कामतासे लाभ और सकामतासे हानि संख्या ५] निष्कामतासे लाभ और सकामतासे हानि साधकोंके प्रति-(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज) शास्त्रोंमें कामनाओंके त्यागकी बडी महिमा गायी है और कभी उद्योग करनेपर भी नहीं मिलती। समस्त गयी है; परंतु इस विषयमें यह शंका हो सकती है कि कामनाएँ पूरी हो ही जायँ एेसा कोई नियम नहीं है। क्या मनुष्य सुगमतापूर्वक सम्पूर्ण कामनाओंका त्याग कर कुछ कामनाएँ पूरी हो जाती हैं और कुछ कामनाएँ चेष्टा करनेपर भी पूरी नहीं होतीं—यह सबका अनुभव है। सकता है? भगवान्, शास्त्र और संत-महात्माओंके वचनोंपर यदि पदार्थोंकी प्राप्तिमें कामना ही हेतू हो तो सबकी गम्भीरतापूर्वक विचार करनेसे प्रतीत होता है कि मनुष्य कामनाएँ पूरी होनी चाहिये, परंतु ऐसा होता नहीं। अतः कामनाकी पूर्तिमें कामना हेतु नहीं है। कामनाकी पूर्तिमें सम्पूर्ण कामनाओंका त्याग अवश्य कर सकता है।* यदि

ऐसा सम्भव नहीं होता तो भगवान्, शास्त्र और संत-हेतु है—पुराने कर्मोंका फल, जो मिलनेवाला रहता है। महात्मा कामनाओंके त्यागकी बात ही नहीं कहते। इस कामना करें अथवा न करें, जो फल मिलनेवाला है, वह

विषयपर आप स्वयं गहराईसे विचार करके अनुभव करें, किसी अन्य प्रमाणकी आवश्यकता नहीं है। पहली बात यह है कि कोई भी कामना निरन्तर

नहीं रहती। जो वस्तु निरन्तर नहीं रहती, उसका त्याग सुगमतासे किया जा सकता है। 'मैं हूँ' यह 'मैं'पन जाग्रत् और स्वप्नकी अवस्थामें तो स्पष्टरूपसे दीखता है, परंतु सुषुप्ति (गाढ़ी निद्रा)-की अवस्थामें छिपा

रहता है; क्योंकि सुष्पितसे जागनेपर हम कहते हैं कि 'मैं बडे सुखसे सोया'। इससे सिद्ध होता है कि सुषुप्तिमें 'मैंं'पनका अनुभव न होनेपर भी वह नष्ट नहीं होता।

इस प्रकार जाग्रत्, स्वप्न और सुष्पि—इन तीन अवस्थाओंमें निरन्तर रहनेवाले 'मैं'पनका भी त्याग करनेके लिये भगवान् कहते हैं—'निर्ममो निरहंकारः' (गीता २।७१)।

फिर निरन्तर न रहनेवाली अर्थात् उत्पन्न और नष्ट होनेवाली कामनाके त्यागमें कोई कठिनाई नहीं माननी है, वह तो होकर ही रहेगा और जो नहीं होनेवाला चाहिये। दुसरी बात यह है कि संसारमें हम जिस है, वह कभी नहीं होगा-चाहे उसकी कामना करें या

तो मिलेगा ही; जैसे-रोग होना, घाटा लग जाना, घरमें किसीकी मृत्यु हो जाना, निन्दा-अपमान हो जाना आदिके लिये कोई कामना नहीं करता; परंतु फिर भी वे होते हैं। विचार करना चाहिये कि हम जब रोगसे मुक्त

होनेकी कामना करते हैं, तो क्या स्वस्थ हो जाते हैं? तात्पर्य यह है कि रोगकी कामना किये बिना भी रोग आता है और कोई कामना किये बिना भी नीरोगता रहती है। ऐसे ही घाटा लगनेकी कामना किये बिना भी

घाटा लग जाता है और बिना कोई विशेष कामना किये भी मुनाफा हो जाता है। निन्दा-अपमानकी कामना न करनेपर भी निन्दा-अपमान होते हैं और बिना कामना किये भी प्रशंसा और सम्मान होते हैं। इसका कारण यही है कि ये सब पूर्वकृत कर्मों के ही फल हैं, कामनाओंके नहीं। तात्पर्य यह हुआ कि जो होनेवाला

वस्तुकी कामना करते हैं, वह कभी तो प्राप्त हो जाती न करें। * प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ मनोगतान् । आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥ (गीता २।५५) 'पार्थ! जिस कालमें यह पुरुष मनमें स्थित सम्पूर्ण कामनाओंको भलीभाँति त्याग देता है और आत्मासे आत्मामें ही सन्तुष्ट रहता है, उस कालमें वह स्थितप्रज्ञ कहा जाता है।'

विहाय कामान्यः सर्वान्युमांश्चरति निःस्पृहः।निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति॥ (गीता २।७१) 'जो पुरुष सम्पूर्ण कामनाओंका त्यागकर स्पृहारहित, ममतारहित और अहंकाररहित होकर विचरता है, वह शान्तिको प्राप्त होता है।' यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिता:।अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते॥ (कठोपनिषद् २।३।१४)

'साधकके हृदयमें स्थित सम्पूर्ण कामनाएँ जब समूल नष्ट हो जाती हैं, तब वह मरणधर्मा मनुष्य अमर हो जाता है और उसे यहीं (इस

मनुष्य-शरीरमें ही) ब्रह्मका भलीभाँति अनुभव हो जाता है।

<u>ष्ट्रम्यत्र प्रमा</u>यह सोचना चाहिये कि यदि कोई कामना पूरी हो पराधीनताका अनुभव करते हैं और यदि वह मिल जाय

भाग ९२

मिलनेपर आप ऐसा सोचते हैं कि 'अब हम स्वाधीन

जाती है तो उसके बाद हमारी क्या स्थिति होती है। मान तो आप अपनेको स्वाधीन समझने लगते हैं। रुपयोंके

लें कि किसीके मनमें यह कामना पैदा हुई कि मुझे सौ

हो ? क्या उपाय करें ? अभीष्ट वस्तुके न मिलनेपर आप

रुपये मिल जायँ, इसके पहले उसके मनमें सौ रुपये हो गये, चाहे जो वस्तु खरीदें, चाहे जहाँ रुपये खर्च पानेकी कामना नहीं थी, अत: अनुभवसे यह सिद्ध होता करें, रुपयोंके बलपर अब हम इच्छित वस्तुको प्राप्त कर

है कि कामना उत्पन्न होती है। जबतक सौ रुपयोंकी सकते हैं' इत्यादि। पर थोड़ी गहराईसे विचार करके देखें कामना उत्पन्न नहीं हुई थी, तबतक 'निष्कामता' की कि रुपये 'स्व' हैं या 'पर'? अर्थात् आप स्वरूपतया

स्थिति थी। उद्योग करनेपर जब सौ रुपये मिल जाते हैं, रुपये ही हैं या आप रुपयोंसे भिन्न हैं ? रुपयोंको आप तब सौ रुपयोंमें सन्तोष नहीं होता—नयी कामना पैदा कमाते हैं. इसलिये वे आपसे भिन्न अर्थात 'पर' ही हैं।

तब सौ रुपयोंमें सन्तोष नहीं होता—नयी कामना पैदा कमाते हैं, इसलिये वे आपसे भिन्न अर्थात् 'पर' ही हैं। होती है कि मुझे हजार रुपये मिल जायँ। यदि सौ रुपये अतएव उन रुपयोंके अधीन होनेसे आप पराधीन ही तो

हिता है कि मुझ हजार रुपय मिल जाय। यदि सा रुपय - अंतिएव उन रुपयांक अवान होनस आप परावान हो ता मिलने पर सन्तोष हो जाय कि अब हमें अधिक कुछ हुए। जो पराधीनता वस्तुके अभावमें कामनाके कारण

भी नहीं चाहिये, तो भी (सौ रुपयोंकी कामना पैदा रहती है, वही पराधीनता वस्तुके मिलनेपर भी रहती है। होनेसे पहलेकी) उसी 'निष्कामता' की स्थिति पुन: आ तात्पर्य यह कि कामनाकी पूर्ति और अपूर्ति—दोनोंमें

जाती है। फिर (सौ रुपयोंकी) कामनासे मिला ही क्या? पराधीनता बराबर ही रहती है। जबतक मनमें कामना है, केवल परिश्रम ही तो मिला! जिस प्रकार कोल्हूका बैल तबतक पराधीनता है। कामनाके नहीं होनेसे हम स्वाधीन

यदि उम्रभर चलता रहे तो भी वह एक कदम भी घेरेसे हो जाते हैं। बाहर नहीं बढ़ पाता, वैसे ही कामनासे वस्तुत: कुछ भी चाह गयी चिंता मिटी मनुवा बेपरवाह।

बाहर नहीं बढ़ पाता, वैसे ही कामनासे वस्तुत: कुछ भी चाह गयी चिंता मिटी मनुवा बेपरवाह। मिलता नहीं है। जिसको कछू न चाहिये सो है शाहनशाह॥

एक विलक्षण बात यह है कि अभाव होनेसे ही कामना नहीं होनेपर मनुष्य 'शाहोंका भी शाह

कामना पैदा होती है। जैसे अमुक वस्तु मेरे पास नहीं 'शाहनशाह'—राजाओंका राजा बन जाता है। कामनाके

है, वह मिल जाय। यदि कामना पूरी नहीं होती तो आप रहते हुए मनुष्यके पास चाहे कितने ही रुपये आदि व्याकुल होते हैं और सोचते हैं कि यह कामना कैसे पूरी पदार्थ हों, परंतु वह गुलाम ही रहेगा। (कामनासे रहित

ही राजाओंका भी राजा महाराज है।)

परिधिके भीतर ले जाया जाय; क्योंकि नगवा, जहाँ विश्वविद्यालय है, शास्त्रके अनुसार काशीकी परिधिके बाहर है, और वहाँ मरनेवालोंको काशी-लाभ—सुलभ मोक्ष नहीं होता। मालवीयजीको इस बातचीतका किसी

तरह पता चल गया। उन्होंने बाबू ज्योतिभूषण गुप्तको बुलवाया। गुप्तजी स्वर्गीय राजा मोतीचन्दके उत्तराधिकारी हैं और उन दिनों विश्वविद्यालयके अवैतनिक कोषाध्यक्ष थे। मालवीयजी उन्हें अपने पुत्रके समान मानते थे और यज्ञोपवीतमें उन्होंने स्वयं उनको मन्त्र-दीक्षा दी थी। उनसे मालवीयजीने कहा—'देखो ज्योति! मुझे ये लोग

यज्ञीपवीतमें उन्होंने स्वयं उनको मन्त्र-दक्षिा दी थी। उनसे मालवीयजीने कहा—'देखो ज्योति! मुझे ये लोग काशी न ले जाने पायें। मैं अभी मोक्ष नहीं चाहता। मेरे काम अधूरे पड़े हैं। मुझे विश्वविद्यालय और देशकी सेवा

करनी है। बोलो, वचन देते हो कि तुम मेरे इस आदेशका पालन करोगे।' ज्योतिभूषणजी हक्का-बक्का हो गये और वचन दे दिया तब मालवीयजीको शान्ति मिली। मुक्तिके प्रति यह निष्कामता कितनी उदात्त है। संख्या ५] हमारा दु:ख कैसे दूर हो ? हमारा दुःख कैसे दूर हो ? (स्वामीजी श्रीकृष्णानन्दजी महाराज) हम चाहते हैं सुख और सुखके लिये ही दिन-रात रो रहा था। किसीने रोनेका कारण पूछा तो उसने कहा— चोटीका पसीना एडीतक बहाते रहते हैं। विश्राम करनेके 'मेरी बूढ़ी सास मर गयी है।'सास मर गयी तो तुमको क्या लिये भी समय नहीं मिलता। पर क्या इससे हमें सुख मिल हुआ—तुम तो नहीं मर गये। किसीकी घडी खो गयी तो ही जाता है ? सुखी होनेके लिये यह परमावश्यक है कि उसने अपने-आपको भी खो दिया। शरीर और संसारके जिस तरहका सुख हम चाहते हैं, उस तरहके सुखका दु:खको हम अपना दु:ख और शरीर तथा संसारके नाशसे स्वरूप हम जान लें। अन्यथा हम दु:खको ही सुख हम अपना नाश समझते हैं। अत: हमको अपने स्वरूपका समझकर उसके पीछे पड जाते हैं। फलत: हमें सुखके ज्ञान होना आवश्यक है। हमें निश्चय करना है कि हम इन बदले दु:ख ही उठाना पड़ता है। यह निश्चित बात है कि पाँच भूतोंका संघात नहीं, पर इन सबसे परे सच्चिदानन्द-दु:खके स्वरूपको जान लेनेसे हमें दु:खसे बचनेमें सहायता स्वरूप परमात्माके अंश हैं। अत: यह जन्म-मरण हमारा मिलती है और सुखके स्वरूपको जान लेनेसे सुखकी प्राप्तिमें। नहीं है। यह तो हमने मान रखा है। शरीरसे संसारकी सेवा कर देनेसे, मनसे अपनेको दु:खको दूर करनेके लिये त्याग ही सर्वोत्तम उपाय है। 'त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्' इच्छा सभी प्रकारके दुःखोंकी परमात्माका मान लेनेसे और बुद्धिसे अपने स्वरूपका जननी है। इसका त्याग करना चाहिये। मोहके कारण ही निश्चय कर लेनेसे मनुष्य सदाके लिये शान्तिको पाकर सम्बन्धियोंके बिछुड़नेपर वियोगजनित दु:खका अनुभव कृतकृत्य हो जाता है। यही ज्ञान, कर्म और भक्तिका होता है। अत: मोहको समूल नष्ट कर देना चाहिये। पवित्र संगम—त्रिवेणी है। लोगोंका मत है कि सुख-दु:ख प्रारब्ध अथवा देहाभिमानके कारण ही अपमानजनित दु:ख असह्य हो कर्मफल है। पर यह बात जँचती नहीं। प्रारब्ध तो केवल जाता है। अत: देहाभिमानका त्याग करना चाहिये। ममता तो दु:खका मूल है ही, अत: इसकी तो जड़ ही उखाड़ परिस्थितिको लाकर सामने खडा कर देता है। उस फेंकनी चाहिये। जो लोग संसारकी आशा लगाकर बैठे हैं, परिस्थितिको अनुकूल या प्रतिकूल मानकर सुख या दु:ख उनको तो दु:ख भोगना ही पड़ेगा; क्योंकि संसारकी कोई मान लेना तो अपनी मौज है। मान लीजिये कि किसीकी भी शक्ति हमारी आशाको पूरी नहीं कर सकती। आशा स्त्री मर गयी। तो स्त्रीका मरना तो परिस्थिति है, जिसको उस परम करुणावरुणालय प्रभुकी ही करनी चाहिये। प्रारब्धने उपस्थित कर दिया है। पर स्त्रीके मरनेपर दु:खसे सदाको सुखी हो जानेके लिये हम अपने शरीरसे व्याकुल हो जाना, यह केवल अज्ञान है। अज्ञानी पुरुष ही संसारकी सेवा करते रहें। मनसे परम प्रभुको अपने किसी घटनामें दु:ख या सुख मान लेता है। अत: विवेककी बड़ी आवश्यकता है। जिसको सुख-दु:खका मानकर उनके ही होकर रहें और बुद्धिसे अपने स्वरूपका निश्चय कर लें कि 'मैं कौन हूँ।' इस तरहसे विवेक है वह तो हानि-लाभ, जन्म-मरण, जय-पराजय हम संसारकी सेवा करके संसारके रागसे मुक्त हो और शत्रु-मित्र—इन द्वन्द्वोंमें सम रहता है। इस लेखके जायँगे। सेवाका अर्थ है—संसारकी वस्तु संसारको दे दीन लेखकने तो ऐसे व्यक्तियोंको देखा है, जिनको माँ-देना। संसारकी वस्तु संसारको दे देनेसे हम संसारके बाप और अन्य सम्बन्धियोंकी मृत्यूपर भी जरा-सा शोक ऋणसे मुक्त हो जायँगे। जबतक यह ऋण रहेगा तबतक नहीं हुआ। एक सज्जनके पिता मर गये तो वे कीर्तन और **'पुनरपि जननं पुनरपि मरणम्'** बना ही रहेगा। श्रीगीताजीका पाठ करने लगे। अपने स्वरूपका निश्चय न होनेके कारण ही हम इससे सिद्ध है कि हमने सुख-दु:ख केवल मान ही शरीरके दु:खसे दु:खका और शरीरकी हानिसे अपनी रखा है। वह तत्त्वतः कुछ नहीं है। इसलिये विवेकका आदर करके हमें इन द्वन्द्वोंसे मुक्त हो जाना चाहिये। हानिका अनुभव करते रहते हैं। एक मनुष्य फूट-फूटकर

पर हित सरिस धर्म नहिं भाई (श्रीसीताराम गुप्ताजी)

कविवर रहीमका प्रसिद्ध दोहा है-उसके उस हाथकी उँगलियोंपर भी लग गया। यह उस मरहमका ही कमाल था, जिससे युवकके दोनों हाथोंकी

यों 'रहीम' सुख होत है उपकारी के संग।

बाँटनवारे को लगे ज्यों मेंहदी के रंग॥

उँगलियोंका दर्द गायब-सा होता जा रहा था। अब तो

युवक सुबह, दोपहर और शाम तीनों वक्त बूढ़ी अम्माके दूसरोंकी भलाई करनेवाला उसी प्रकारसे सुखी होता

है, जैसे दूसरोंके हाथोंपर मेंहदी लगानेवालेकी उँगलियाँ कन्धोंपर मरहम लगाता और उसकी सेवा करता। कुछ

ही दिनोंमें बुढ़िया पूरी तरहसे ठीक हो गयी और साथ

खुद भी मेंहदीके रंगमें रँग जाती हैं। जो इत्र बेचते हैं, वे

खुद उसकी बू-बाससे महकते रहते हैं। जिस प्रकारसे

एक फूल बेचनेवालेके कपड़ों और बदनसे फूलोंकी सुगन्ध

नहीं जा सकती, उसी प्रकारसे दूसरोंकी भलाई करनेवाले

व्यक्तिका कभी अहित नहीं हो सकता। दूसरोंकी मदद

अथवा परोपकारका नि:सन्देह बड़ा महत्त्व है। प्रत्यक्ष

रूपसे ही नहीं, परोक्षरूपसे भी इसका बडा महत्त्व है।

एक बृढिया थी, जो बेहद कमजोर और बीमार थी।

रहती भी अकेली ही थी। उसके कन्धोंमें दर्द रहता था, लेकिन वह इतनी कमजोर थी कि खुद अपने हाथोंसे दवा

लगानेमें भी असमर्थ थी। कन्धोंपर दवा लगवानेके लिये कभी किसीसे मिन्नतें करती तो कभी किसीसे। एक दिन

बुढियाने पाससे गुजरनेवाले एक युवकसे कहा कि बेटा!

जरा मेरे कन्धोंपर ये दवा मल दे। भगवान् तेरा भला करेगा। युवकने कहा कि अम्मा! मेरे हाथोंकी उँगलियोंमें तो खुद

दर्द रहता है। मैं कैसे तेरे कन्धोंकी मालिश करूँ ? बृढियाने कहा कि बेटा! दवा मलनेकी जरूरत

नहीं। बस, इस डिबियामेंसे थोडा मरहम अपनी उँगलियोंसे

निकालकर मेरे कन्धोंपर फैला दे। युवकने अनिच्छासे

डिबियामेंसे थोड़ा-सा मरहम लेकर अपने एक हाथकी

उँगलियोंसे बुढ़ियाके दोनों कन्धोंपर लगा दिया। दवा लगाते ही बुढ़ियाकी बेचैनी कम होने लगी और वह

इसके लिये उस युवकको आशीर्वाद देने लगी। बेटा,

भगवान् तेरी उँगलियोंको भी जल्दी ठीक कर दे। बुढ़ियाके आशीर्वादपर युवक अविश्वाससे हँस दिया,

लेकिन साथ ही उसने महसूस किया कि उसकी उँगलियोंका दर्द भी गायब-सा होता जा रहा है।

वास्तवमें बृढियाको मरहम लगानेके बाद युवककी

ही युवकके दोनों हाथोंकी उँगलियाँ भी दर्दसे मुक्त होकर ठीकसे काम करने लगीं। तभी तो कहा गया है कि जो दुसरोंके जख्मोंपर मरहम लगाता है, उसके खुदके

जख्मोंको भरनेमें देर नहीं लगती।

'दूसरोंके जख्मोंपर मरहम लगाना' अब इस मुहावरेको भी देख लीजिये। दुसरेके जख्मोंपर मरहम

लगानेका अर्थ है किसीको सान्त्वना देना, किसीकी पीड़ाको कम करना। जरूरी नहीं इसके लिये कोई दवा या मरहम ही लगाया जाय; क्योंकि यह पीडा भौतिक

कष्टदायक होती है। यदि कोई किसीको किसी भी प्रकारकी पीडासे मुक्त करता है तो पीडितको बडी राहत मिलती है। वह पीड़ाको कम करनेवाले या कष्टको

ही नहीं मानसिक भी हो सकती है। पीडा जो भी हो,

समाप्त करनेवालेके प्रति कृतज्ञतासे भर उठता है और आशीर्वाद या दुआएँ देने लगता है।

कृतज्ञताकी अवस्था कृतज्ञको ही नहीं, मदद करनेवालेको भी अच्छी लगती है। जब कोई उसके प्रति

कृतज्ञताका भाव प्रकट करता है अथवा उसका धन्यवाद करता है या किसी भी अन्य रूपमें आभार प्रकट करता

है तो वह एकदम विनम्र होकर परमार्थके भावोंसे भर उठता है। उसका मन करता है कि मैं सदैव लोगोंके कष्ट दूर करनेमें लगा रहूँ। दुनियाके सभी लोग कष्टमुक्त

हो जायँ। ऐसी भावावस्थामें व्यक्तिके शरीरमें स्थित अन्त:स्रावी ग्रन्थियोंसे लाभदायक हार्मोन्सका उत्सर्जन

प्रारम्भ हो जाता है, जो उसे रोगोंसे बचाने तथा रोगग्रस्त होनेपर शीघ्र रोगमुक्त करनेमें सहायक होते हैं। किसीकी मदद करने, कोई अच्छा काम करने

उँगलियोंपर कुछ मरहम लगा रह गया था। उसने दूसरे अथवा निष्काम भावसे कोई समाजोपयोगी कार्य करनेसे Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma l. MADE WITH LOVE BY Avinash/Sha हाथका उँगलियोंस उस पोछनका कोशिश की तो मस्हम समाजमें व्यक्तिकी प्रतिष्ठा बढ़ती है और इसके लिय

िभाग ९२

लिये रोग-मुक्ति, अच्छा स्वास्थ और दीर्घायु सुनिश्चित पिरहत बस जिनके मन माहीं। तिन कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं।

कर सकते हैं, इसमें सन्देह नहीं।

गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—

पर हित सिरस धर्म निहं भाई। पर पीड़ा सम निहं अधमाई॥ भलाईका जज्बा बना रहता है, उनके लिये संसारकी कोई निर्नय सकल पुरान बेद कर। कहेउँ तात जानिहं कोबिद नर॥ भी वस्तु ऐसी नहीं है, जो उन्हें न मिल सके। दूसरोंके

है। गोस्वामीजी आगे कहते हैं—

जख्मोंपर मरहम लगानेवाला, सच्चे मनसे लोगोंकी सेवा

उपयोगी होता है। दूसरोंकी मदद करके भी हम अपने

नर सरीर धरि जे पर पीरा। करहिं ते सहिंह महा भव भीरा॥

करिंह मोह बस नर अघ नाना। स्वारथ रत परलोक नसाना॥ करनेवाला आध्यात्मिक, आधिभौतिक एवं आधिदैविक (राठच०मा० ७।४१।१—४) तीनों प्रकारकी व्याधियोंसे मुक्त होकर आनन्दपूर्वक जीवन अर्थात् दूसरोंकी भलाईके समान कोई धर्म नहीं ही नहीं व्यतीत करता बल्कि वह धर्मका भी सही अर्थीमें और दूसरोंको कष्ट देनेके समान कोई अधर्म, नीचता पालन करता है और स्वस्थ एवं प्रसन्न रहते हुए यह अथवा पाप नहीं। यही समस्त पुराणों और वेदोंका सार लोक ही नहीं परलोक भी सँवार लेता है।

प्रेरक-प्रसंग— मैडम ब्लैवट्स्कीकी परदुःखकातरता — मैडम ब्लैवट्स्कीका जन्म रूसके दक्षिण भागमें इक्टरीनसलो नामक स्थानमें सन् १८३१ ई०में एक समृद्ध परिवारमें हुआ था। उन्होंने थियोसॉफिकल समाजकी स्थापनामें अमित योग दिया था और लोगोंमें निर्मल अध्यात्मशक्तिके प्रति श्रद्धा जगायी।

उनके जीवनका एक मार्मिक प्रसंग है, जिससे उनके परिहत-चिन्तनपर प्रकाश पड़ता है। अपनी विचारधाराके प्रचारके लिये वे अमेरिकाके न्यूयार्क नगरमें जा रही थीं। उन्होंने प्रथम श्रेणीका टिकट लिया था और हारवरमें जहाजपर चढ़ने ही जा रही थीं कि देखा, एक स्त्री अपने दो बच्चोंको साथ लिये सिसककर

रो रही है। ब्लैवट्स्कीने रोनेका कारण पूछा। 'बहन! मेरे पतिने मुझे अमेरिका बुलानेके लिये रुपये भेजे थे। जहाजके एक धोखेबाज एजेण्टने मुझे नकली टिकट देकर मेरे पैसे ठग लिये। मैंने उसको बहुत खोजा, पर वह दीखता ही नहीं। मेरे टिकट साधारण

श्रेणीके थे।' स्त्रीने अपनी विवशता प्रकट की। ब्लैवर्स्कीका कोमल हृदय उसकी वेदनासे द्रवित हो उठा। 'बहन! बस इतनी ही बात है? इसके लिये रोने-धोनेसे लाभ ही क्या है।' करुणामयी ब्लैवर्स्कीने मुसकराकर कहा। स्त्रीको अपने बच्चोंसहित पीछे-पीछे आनेका संकेत किया। वह ब्लैवर्स्कीकी सद्भावनासे

आशान्वित हो उठी। ब्लैवट्स्की जहाजके एजेण्टके पास गयीं, उन्होंने अपना प्रथम श्रेणीका टिकट बदल दिया, उसके स्थानपर साधारण श्रेणीके चार टिकट ले लिये।

'आओ, बहन! जहाज खुलना ही चाहता है। हम शीघ्रतासे अपने स्थानपर चले चलें।' ब्लैवट्स्कीके पीछे-पीछे स्त्री अपने दोनों बच्चे लेकर जहाजपर चढ़ गयी। ब्लैवट्स्कीने साधारण स्थानपर खड़ी होकर न्यूयार्ककी यात्रा पूरी की।

साधन-सूत्र [काम-क्रोध-लोभपर विजय आवश्यक] (आचार्य श्रीगोविन्दरामजी शर्मा) 🕏 आप कल्पवृक्षके नीचे बैठे हैं। जैसी कामना जबतक यह शरीर श्मशानमें न चला जाय, तबतक कोई करेंगे, वैसी ही प्राप्ति हो जायगी। आपका मन असत् आश्वासन नहीं दे सकता।' विचारोंसे भरा है तो सत्की प्राप्ति कैसे हो पायेगी? 🛊 वृद्धावस्थामें क्रोध और काम तो शान्त हो जाते हैं; 🕏 काम और क्रोध बड़े ही क्रूर हैं, इनमें दयाका पर लोभ बढ़ता जाता है। लोभ पापका जनक है। पाप नाम नहीं, इन्हें काल ही समझें। ये ज्ञान-निधिके साँप, बढ़ेंगे तो जीव दुखी होगा। लोभको सन्तोषके द्वारा जीता विषय-कन्दराके बाघ और भजन-मार्गके भेड़िये हैं। ये जा सकता है। 🔹 अवचेतन मस्तिष्कमें बीजरूपमें पड़ी हुई वासनाएँ बिना ही जलके डुबो देते हैं, बिना ही आगके जला देते हैं और बिना ही शस्त्रके मार डालते हैं। अनुकूल परिस्थितियाँ पाकर अंकुरित हो जाती हैं, फूलने-

जल पीकर और सूखे पत्ते खाकर रहते थे, वे विश्वामित्र, पराशर आदि भी सुन्दर स्त्रियोंके मुखको देखकर मोहको प्राप्त हो गये, फिर घी, दूध, दही आदि नाना प्रकारके व्यंजन खानेवाले यदि अपनी इन्द्रियोंका निग्रह कर सकें तो मानो विन्ध्याचल पर्वत समुद्रपर तैरने लगा, अर्थात् असम्भव बात है। साधनाके पथपर काम प्रबल शत्रु है। क्ष कामनारूपी प्रेत जब व्यक्तिके मनमें प्रवेश कर जाता है तो उससे सहज ही मुक्त नहीं हुआ जा सकता। वह नाना प्रकारकी यन्त्रणाएँ देता है तथा व्यक्तिके बल-बद्धिका हरण कर लेता है। अन्तत: तीव्र वैराग्यके

🛊 भर्तृहरि लिखते हैं 'जो लोग वायु-भक्षण करके,

मनमें, मन इन्द्रियोंमें और इन्द्रियाँ विषयोंमें विलीन होती हैं तथा जीवको सुख-भोगकी ओर ले जाती हैं, जिसका परिणाम पराधीनता या बन्धन होता है। इसके विपरीत जब वासनाकी निवृत्ति हो जाती है तो सुखभोग योगमें बदल जाता है, जिसका परिणाम स्वाधीनता या मुक्ति होता है। क्ष कुछ चाहनेसे ही अशान्ति आती है। कुछ भी चाहना न हो तो अशान्ति आ ही नहीं सकती। आवश्यकता

🔅 जीवमें जब वासनाका उदय होता है तो बुद्धि

अस्त्रद्वारा ही उससे पीछा छुड़ाया जा सकता है।

चाहना न हो तो अशान्ति आ ही नहीं सकती। आवश्यकता तो परमात्मा सबकी पूरी करते ही हैं। चाहना आजतक किसीकी पूरी नहीं हुई। संसारकी चाहना मिटनेसे ही परमात्मासे योग होता है।

क्ष ब्रह्मलीन स्वामी अखण्डानन्दजी सरस्वतीके अनुसार 'सौ सालके एक महात्माने कहा कि—'अगर ऋषिकेशसे लाहौरतककी धरती सोनेकी हो, तो मेरे मनमें लोभ नहीं आयेगा। लेकिन मैं मर रहा हूँ, तो भी 'काम'के बारेमें

जाते हैं और वह व्यक्ति झूठ एवं छल-कपटका आश्रय लेकर ही प्रत्येक कार्य करता है। श्र जैसे वनका सबसे शक्तिशाली पशु हाथी स्पर्श-सुखके कारण गड्ढेमें गिरकर बँधनेके लिये विवश हो जाता है, ऐसे ही जीवात्मा अपने सच्चिदानन्दस्वरूपको भूलकर

कामके पाशमें बँधकर अवनतिको प्राप्त होता है।

फलने लगती हैं तथा प्रबल होकर जीवको अधीन कर लेती

दो रूपोंमें है। कभी तो वह मीठा जहर बनकर आता है

और कभी कडुआ जहर बनकर आता है। दोनोंसे जीवका

पतन होता है। इस शत्रुका नाश विवेकसे ही संभव है। श्व लोभरूपी शत्रु जिसके हृदयमें डेरा डाल देता है,

उस व्यक्तिसे सच्चाई और शील आदि सद्गुण विदा हो

🔹 काम और क्रोध—शत्रु तो एक ही है, किंतु आता

हैं। अत: हृदयमें सदैव शुभ भावोंकी सरिता बहने दें।

परिस्थिति पाकर जग जाता है। अपनेको राममें लगा दो तो इसका परिष्कार हो सकता है। तत्त्वकी प्राप्ति होनेपर ही इसका नाश सम्भव है। क्ष काम, क्रोध और लोभ आदि विकारोंका वेग बड़ा प्रबल होता है। इनके बहावमें विवेकका नाश हो जाता है। भगवान्की शरणमें रहनेसे तथा दृढ़ निश्चयात्मिका बुद्धिसे

🛊 कामका नाश नहीं होता; क्योंकि यह सृष्टिका मूल

कारण है। राखके नीचे दबी आगकी तरह यह अनुकूल

प्रबल होता है। इनके बहावमें विवेकका नाश हो जाता है। भगवान्की शरणमें रहनेसे तथा दृढ़ निश्चयात्मिका बुद्धिसे ही इनपर विजय पायी जा सकती है। क्ष कामनाओंका कभी अंत नहीं आता है, व्यक्तिका

जीवन ही समाप्त हो जाता है, किंतु जिसका मन प्रभु-भिक्तमें लग जाता है, उसकी समस्त कामनाएँ ईश्वर पूरी कर देते हैं।

पवनसुतके लंका-प्रवासकी एकादश उपलब्धियाँ संख्या ५] पवनसुतके लंका-प्रवासकी एकादश उपलब्धियाँ (डॉ० श्रीगार्गीशरण मिश्रजी 'मराल') रामचरितमानसका सुन्दरकाण्ड इसीलिये सुन्दर है सोरह जोजन मुख तेहिं ठयऊ। तुरत पवनसुत बत्तिस भयऊ॥ कि उसमें पवनसुतके लंकाप्रवासकी एकादश उपलब्धियाँ जस जस सुरसा बदनु बढ़ावा। तासु दून कपि रूप देखावा॥ समाहित हैं। पवनसुतकी इन उपलब्धियोंके कारण यदि सत जोजन तेहिं आनन कीन्हा। अति लघु रूप पवनसुत लीन्हा।। सुन्दरकाण्डको 'हनुमान् काण्ड' कहा जाय तो अत्युक्ति बदन पड़िठ पुनि बाहेर आवा। मागा बिदा ताहि सिरु नावा॥ नहीं होगी। तो आइये, हनुमान्जीकी इन उपलब्धियोंपर (रा०च०मा० ५।२।७—११) दुष्टिपात करें। सुरसाने हनुमान्जीको भयभीत करनेके लिये एक हनुमान्जीके लंका-प्रवासकी पहली उपलब्धि है योजनका मुख फैलाया। तात्पर्य यह कि उसने अपनी देवताओंकी दुत सुरसाकी परीक्षामें शत-प्रतिशत अंक महिमा सिद्धिका प्रयोग किया। इसपर हनुमान्जी भयभीत पाकर उत्तीर्ण होना। जैसे ही हनुमानुजी लंकाके लिये नहीं हुए वरन् उन्होंने उससे दुगना रूप दिखाकर दुगनी रवाना हुए, देवताओंने उनके बल-बुद्धिकी परीक्षा लेनेके महिमा सिद्धिका प्रदर्शन किया। यह स्थिति तबतक जारी लिये सर्पोंकी मायाविनी माता सुरसाको भेजा। वस्तुत: रही जबतक सुरसा ने सौ योजनका मुख नहीं बनाया। देवतागण आश्वस्त होना चाहते थे कि जिस जोखिमभरे तदनन्तर हनुमान्जीने लिघमा सिद्धिका प्रदर्शन करते हुए कठिन कार्यके लिये हनुमान्जीको लंका भेजा जा रहा '*अति लघु रूप'* बनाया और सुरसाके मुखमें घुसकर है, उस कामके लिये वे सचमुच योग्य और उपयुक्त पात्र बाहर आ गये। ऐसा करके हनुमान्जीने मानों सुरसाको हैं या नहीं-चुनौती दी कि वह उन्हें खा सकती हो तो खाकर दिखाये। इस चुनौतीके पीछे भी उनमें अभिमानकी जात पवनसुत देवन्ह देखा। जानैं कहुँ बल बुद्धि बिसेषा॥ भावना नहीं रही; क्योंकि उन्होंने अंतमें सुरसाको सिर सुरसा नाम अहिन्ह कै माता। पठइन्हि आइ कही तेहिं बाता॥ झुकाकर अभिवादन भी किया। इस प्रकारसे हनुमान्जीके आजु सुरन्ह मोहि दीन्ह अहारा। सुनत बचन कह पवनकुमारा॥ निर्भयता, साहस, शारीरिक बल, सिद्धियोंमें श्रेष्ठता, (रा०च०मा० ५।२।१-३) पवनसुतने जैसे ही सुरसाके मुखसे 'सुरन्ह' शब्दका बुद्धिचातुर्य, विनम्रता आदि गुणोंका परिचय मिलता है। उच्चारण सुना, वे समझ गये कि यह हमारी शत्रु नहीं तभी तो प्रसन्न होकर सुरसाने हनुमान्जीको आशीर्वाद हो सकती; क्योंकि वे देवताओंके कामसे ही तो लंका देते हए कहा-जा रहे थे। अत: उन्होंने न तो सुरसापर आक्रमण किया राम काजु सबु करिहहु तुम्ह बल बुद्धि निधान। और न ही अपशब्द कहे, उसे सिर्फ यह बताया कि वे आसिष देइ गई सो हरिष चलेउ हनुमान॥ श्रीरामके कामसे जा रहे हैं, काम करके जैसे ही लौटेंगे (रा०च०मा० ५। २) और सीताजीका समाचार प्रभु रामको देंगे, तब वे स्वयं पवनसुतके लंका-प्रवासकी दूसरी उपलब्धि है समुद्रमें उसके मुखमें आकर बैठ जायँगे ताकि वह उन्हें खा रहनेवाली राक्षसीका वध। यह निशिचरी समुद्रमें रहती सके। इसलिये उन्होंने उसे माँ कहकर सम्बोधित किया थी। इसकी विशेषता यह थी कि यह आकाशमें उड़नेवाले जीवोंको खाया करती थी। आकाशके जीवोंकी समुद्रमें और कहा कि अभी उन्हें जाने दें। जब सुरसाने हनुमान्जीको किसी भी हालतमें जाने देना स्वीकार नहीं पड़नेवाली परछाईंको जैसे ही यह पकड़ती थी, वे उड़ किया तब हनुमान्जीने कहा तो फिर तू मुझे खा ही ले। नहीं पाते थे और समुद्रमें गिर पड़ते थे, तब यह उन्हें खा इसपर सुरसाने हनुमान्जी को खानेके लिये-लेती थी। उसने वही छल हनुमान्जीसे किया। हनुमान्जी जोजन भरि तेहिं बदनु पसारा। कपि तनु कीन्ह दुगुन बिस्तारा॥ तुरंत उसका कपट पहचान गये। फलत: हनुमान्जीने

भाग ९२ मित्रता करना। किसी अनजाने देशमें अपने शत्रु राजाकी पहले उसे मार डाला और बादमें समुद्र पार किया— राजधानीमें किसी सज्जन व्यक्तिको खोजना और फिर निसिचरि एक सिंधु महुँ रहई। करि माया नभु के खग गहुई॥ उसे अपना मित्र बना लेना निश्चय ही एक बडी जीव जंत जे गगन उडाहीं। जल बिलोकि तिन्ह कै परिछाहीं॥ उपलब्धि है। हनुमान्जीने लंकामें विभीषणकी एक गहड़ छाँह सक सो न उड़ाई। एहि बिधि सदा गगनचर खाई॥ सज्जनके रूपमें पहचान अपने बुद्धिचातुर्यसे—उनके सोइ छल हनूमान कहँ कीन्हा। तासु कपटु कपि तुरतिहं चीन्हा॥ निवासमें अंकित 'रामायुध' और वहाँ विकसित 'नव ताहि मारि मारुतसुत बीरा। बारिधि पार गयउ मतिधीरा॥ तुलिसकाबुंद 'को देखकर की। तभी मनमें एक शंका (रा०च०मा० ५।३।१-५) पवनस्तकी तीसरी उपलब्धि लंकाके प्रवेशद्वारपर उठी कि लंका तो निशिचरोंकी नगरी है, यहाँ सज्जन रहनेवाली राक्षसी लंकिनीको सबक सिखाना है। जब कहाँ निवास करने आयेगा—*लंका निसिचर निकर* निवासा। इहाँ कहाँ सज्जन कर बासा।। (रा०च०मा० हनुमान्जी मशकका रूप बनाकर लंकामें प्रवेश करने लगे तो लंकिनीने उन्हें देख लिया और कहा कि मेरा ५।६।१) लेकिन इस शंकाका निवारण उसी समय निरादर करके अन्दर कहाँ जा रहा है। रे दुष्ट, तुझे क्या हो गया, जब विभीषणने जागते ही रामका नाम लिया। मेरा भेद ज्ञात नहीं कि जहाँतक जितने भी चोर हैं, वे हनुमान्जीने पुन: अपने बुद्धि-चातुर्यका परिचय देते हुए विभीषणसे हठपूर्वक पहचान करनेका निर्णय लिया और सब मेरे आहार हैं। हनुमान्जीने जैसे ही लंकिनीको इस हेतु तुरंत ब्राह्मणका वेश बनाया और कुछ वैष्णवोचित अपने लिये 'दुष्ट' और 'चोर' शब्द कहते सुना, वे वचन कहकर विभीषणको अपनी ओर आकर्षित किया। समझ गये कि यह शत्रुपक्षकी राक्षसी है। अत: उन्होंने उसे तुरंत एक जोरदार घूँसा लगाया, जिससे वह व्याकुल दोनोंने एक-दूसरेको अपना परिचय दिया और रामका होकर खूनकी उलटी करती हुई धरतीपर लुढ़क गयी। गुणगान किया। विभीषणसे ही हनुमान्जीको सीता किंतु वह पुन: सँभलकर खड़ी हुई और हाथ जोड़कर माताका पता और वहाँ पहुँचनेकी युक्ति भी ज्ञात हुई— विनती करती हुई बोली कि रावणको जब ब्रह्माजीने वर पुनि सब कथा बिभीषन कही। जेहि बिधि जनकसुता तहँ रही।। दिया, तब उन्होंने मुझे यह पहचान बतायी थी कि जब तब हुनुमंत कहा सुनु भ्राता। देखी चहुउँ जानकी माता॥ तू किसी कपिके मारनेसे व्याकुल हो तो समझ लेना कि जुगुति बिभीषन सकल सुनाई। चलेउ पवनसुत बिदा कराई॥ निशिचरोंके संहारका समय आ गया है। फिर उसने इसे (रा०च०मा० ५।८।३—५) पवनसुतकी पाँचवीं उपलब्धि सीतामाताका पता अपने लिये बड़े पुण्यकी बात मानी कि उसे भगवान् रामके दूतके दर्शनका सौभाग्य मिला। अन्तमें लंकिनीने लगाना है। सीतामाता अशोकवाटिकामें जिस अशोकके हनुमान्जीसे लंकानगरीमें प्रवेशकर भगवान् रामके सब पेड़के नीचे सशोक बैठी थीं, हनुमान्जी उसी पेड़के ऊपर पत्तोंके बीच इस प्रकार छिपकर बैठे थे कि वे कार्य करनेका निवेदन किया— सबको देख सकते थे, पर उन्हें कोई नहीं देख सकता नाम लंकिनी एक निसिचरी। सो कह चलेसि मोहि निंदरी॥ था। वहींसे उन्होंने रावण और माता सीताका पूरा संवाद जानेहि नहीं मरमु सठ मोरा। मोर अहार जहाँ लगि चोरा। मुठिका एक महा कपि हनी। रुधिर बमत धरनीं ढनमनी। सुना, जिससे उन्हें पता लगा कि रावण साम, दान, दण्ड, भेद आदि सभी नीतियाँ अपनाकर सीताको अपनी पुनि संभारि उठी सो लंका। जोरि पानि कर बिनय ससंका। पटरानी बनाना चाहता है। रावणके निराश होकर जानेके जब रावनहि ब्रह्म बर दीन्हा। चलत बिरंचि कहा मोहि चीन्हा।। बिकल होसि तैं कपि के मारे। तब जानेसु निसिचर संघारे॥ बाद हनुमान्जीने बड़ी चतुरतासे श्रीरामकी अँगूठी सीताजीतक पहुँचायी और स्वयंका रामदूतके रूपमें तात मोर अति पुन्य बहुता। देखेउँ नयन राम कर दूता॥ परिचय दिया-(रा०च०मा० ५।४।२-८) Hinduisमुत्रको इत्वार् पुरितार्थ हे https://dacipa/dhatma दूर्त MADE WITH LOVE BY Avinash Shi

संख्या ५] पवनसुतके लंका-प्रवास	की एकादश उपलब्धियाँ २३
**************************************	**************************************
यह मुद्रिका मातु मैं आनी। दीन्हि राम तुम्ह कहँ सहिदानी॥	सबसे पहले सामना भट योद्धाओंसे हुआ, जिन्हें अशोक-
नर बानरिह संग कहु कैसें। कही कथा भइ संगति जैसें॥	वाटिकाकी रखवालीके लिये नियुक्त किया गया था। ये
(रा०च०मा० ५।१३।९—११)	रावणकी सेनाके सबसे निचले स्तरके योद्धा थे। हनुमान्जीने
फिर हनुमान्जीने सीताजीको भगवान् रामका संदेश	कुछ भटोंको तो मार डाला, पर कुछको छोड़ दिया तािक
सुनाया, ढाँढस बँधाया और कहा कि भगवान् राम	वे रावणतक समाचार पहुँचा सकें। सामाचार मिलनेपर
वानरोंकी सेना लेकर आयेंगे और राक्षसोंका वधकर तुम्हें	रावणने फिरसे और भटोंको भेजा—
वापस ले जायेंगे। हनुमान्जीका छोटा रूप देखकर	रहे तहाँ बहु भट रखवारे। कछु मारेसि कछु जाइ पुकारे॥
सीताजीको संदेह हुआ कि ये छोटे-छोटे वानर बड़े-बड़े	नाथ एक आवा कपि भारी। तेहिं असोक बाटिका उजारी॥
राक्षसोंका मुकाबला कैसे करेंगे! तब हनुमान्जीने उन्हें	खाएसि फल अरु बिटप उपारे। रच्छक मर्दि मर्दि महि डारे।
अपना विराट् और विकराल रूप दिखाकर सन्तुष्ट	सुनि रावन पठए भट नाना। तिन्हहि देखि गर्जेउ हनुमाना।
किया—	सब रजनीचर कपि संघारे। गए पुकारत कछु अधमारे॥
हैं सुत कपि सब तुम्हिह समाना। जातुधान अति भट बलवाना॥	(रा०च०मा० ५।१८।२—६)
मोरें हृदय परम संदेहा। सुनि कपि प्रगट कीन्हि निज देहा॥	इस प्रकार हनुमान्जीने रावणके प्रथम पादानके इन
कनक भूधराकार सरीरा। समर भयंकर अतिबल बीरा॥	नये भट योद्धाओंका भी आसानीसे संहार कर दिया। तब
(रा०च०मा० ५।१६।६—८)	रावणने अपने पुत्र अक्षयकुमारको द्वितीय श्रेणीके सुभट
हनुमान्जीकी छठीं उपलब्धि सीताजीको भगवान्	योद्धाओंको साथ लेकर भेजा। इसपर हनुमान्जीने एक
रामका संदेश सुनाना है। यह काम सम्भवत: हनुमान्जीके	पेड़ उठाया और उसपर पटककर, उसे मार डाला फिर
अतिरिक्त और कोई नहीं कर सकता था; क्योंकि यह	महागर्जना की। सारे सुभट योद्धाओंमेंसे कुछको मारा,
संदेश वास्तवमें हनुमान्जीने नहीं, स्वयं भगवान् रामने	कुछको मसलकर धूलमें मिला दिया और कुछने जाकर
सीताजीको सुनाया। हनुमान्जीने उक्त संदेश सुनानेके	रावणको बताया कि वानर बड़ा बलशाली है—
लिये अपने हृदयमें विराजे भगवान् रामका आवाहन	पुनि पठयउ तेहिं अच्छकुमारा। चला संग लै सुभट अपारा॥
किया। ऐसा हनुमान्जीको इसलिये करना पड़ा, क्योंकि	आवत देखि बिटप गहि तर्जा। ताहि निपाति महाधुनि गर्जा॥
संदेशकी शब्दावली ऐसी थी कि उसका उच्चारण	कछु मारेसि कछु मर्देसि कछु मिलएसि धरि धूरि।
हनुमान्जी माता सीताके लिये स्वयं नहीं कर सकते थे।	कछु पुनि जाइ पुकारे प्रभु मर्कट बल भूरि।
सम्पूर्ण संदेश उत्तम पुरुषमें कहा गया है, जिससे	(रा०च०मा० ५।१८।७-८, ५।१८)
प्रमाणित होता है कि वह संदेश स्वयं रामने सीताको	इसपर नाराज होकर रावणने बलशाली मेघनादको
सुनाया है। संदेश सुनानेके पहले हनुमान्जीकी भावदशा	भेजा। साथ ही यह निर्देश भी दिया कि वानरको मारना
स्वयं भी यह प्रमाणित करती है कि हनुमान्जीने वह	नहीं केवल बाँधकर लाना, ताकि पता चले कि कपि
संदेश सुनानेके लिये भगवान् रामका आवाहन किया—	कहाँसे आया है। बन्धुके निधनका समाचार सुन नाराज
रघुपति कर संदेसु अब सुनु जननी धरि धीर।	अतुलनीय बलशाली मेघनाद चल पड़ा। हनुमान्जीने उसे
अस कहि कपि गदगद भयउ भरे बिलोचन नीर॥	देखकर समझ लिया कि यह दारुण भट है, जो अपने साथ
(रा०च०मा० ५।१४)	महाभटोंको लेकर आया है। तब हनुमान्जीने एक बहुत
हनुमान्जीकी सातवीं उपलब्धि रावणकी सेनाके	बड़ा पेड़ उखाड़ा और उसके प्रहारसे मेघनादको रथहीन
योद्धाओंके प्रकार और उनकी शक्तिका पता लगाना है।	कर दिया। जबतक मेघनाद सँभले, हनुमान्जीने उसके
यह पता उन्होंने अशोकवाटिकामें फल खाने और उसे	महाभटोंको अपने शरीरसे रगड़कर मसल डाला। फिर
उजाड़नेके बहाने लगाया। अशोकवाटिकामें हनुमान्जीका	मेघनादको एक घूँसा मारकर पेड़पर चढ़ गये। सब प्रकारसे

भाग ९२ ****************************** हनुमान्जी विभीषणका घर छोड़कर सारी लंकाको हताश होकर मेघनादने हनुमान्जीको ब्रह्मास्त्रसे बेसुधकर नीचे गिराया और नागपाशसे बाँधकर ले गया। इस प्रकार जला डालते हैं— हनुमान्जीने पता लगा लिया कि रावणकी सेनामें चार पावक जरत देखि हनुमंता। भयउ परम लघुरूप तुरंता॥ प्रकारके योद्धा—भट, सुभट, महाभट और दारुण भट हैं— निबुकि चढ़ेउ कपि कनक अटारीं। भईं सभीत निसाचर नारीं॥ सुनि सुत बध लंकेस रिसाना। पठएसि मेघनाद बलवाना॥ जारा नगरु निमिष एक माहीं। एक बिभीषन कर गृह नाहीं॥ मारिस जिन सुत बाँधेसु ताही। देखिअ किपिहि कहाँ कर आही।। (रा०च०मा० ५।२५।८-९, २६।६) चला इंद्रजित अतुलित जोधा। बंधु निधन सुनि उपजा क्रोधा।। हनुमान्जीकी दसवीं उपलब्धि सीताका पता लगाकर उनको निशानी चूडामणि भगवान् रामतक पहुँचाना है कपि देखा दारुन भट आवा। कटकटाइ गर्जा अरु धावा॥ तथा सीताकी दशाकी जानकारी देना है। अति बिसाल तरु एक उपारा। बिरथ कीन्ह लंकेस कुमारा॥ चलत मोहि चूड़ामनि दीन्ही। रघुपति हृदयँ लाइ सोइ लीन्ही। महाभट ताके संगा। गहि गहि कपि मर्दइ निज अंगा।। सीता कै अति बिपति बिसाला। बिनहिं कहें भिल दीनदयाला।। तिन्हिह निपाति ताहि सन बाजा। भिरे जुगल मानहुँ गजराजा॥ मुठिका मारि चढ़ा तरु जाई। ताहि एक छन मुरुछा आई॥ (रा०च०मा० ५।३१।१,९) हनुमान्जीकी ग्यारहवीं उपलब्धि भगवान् रामसे उठि बहोरि कीन्हिसि बहु माया। जीति न जाइ प्रभंजन जाया॥ भक्तिका वरदान प्राप्त करना है। हनुमान्जी भगवान् ब्रह्मबान कपि कहुँ तेहिं मारा। परतिहुँ बार कटकु संघारा॥ रामसे भक्तिका दुर्लभ वरदान माँगते हैं और भगवान् उसे तेहिं देखा किप मुरुछित भयऊ। नागपास बाँधेसि लै गयऊ॥ त्रंत प्रदान करते हैं-(रा०च०मा० ५।१९।१—९, २०।१-२) हनुमान्जीकी आठवीं उपलब्धि रावणको वाग्युद्धमें नाथ भगति अति सुखदायनी। देहु कृपा करि अनपायनी॥ परास्त करना है। इसका प्रमाण यही है कि जब कोई सुनि प्रभु परम सरल कपि बानी। एवमस्तु तब कहेउ भवानी॥ वाग्युद्धमें हार जाता है तो वह क्रोधसे तिलमिला उठता (रा०च०मा० ५।३४।१-२) है। यही रावणके साथ भी हुआ। जब रावणने हनुमान्जीसे इस प्रकार पवनसूतके लंका-प्रवासकी एकादश कहा कि तेरी मृत्यु निकट आ गयी है, तभी तू गुरुके उपलब्धियाँ उनके बुद्धिचातुर्य, साहस, बल, सिद्धियों समान मुझे सिखा रहा है। तब हनुमान्जीने कहा कि और भक्ति भावनाका परिचय देती हैं। सबसे बड़ी बात उलटा होनेवाला है, क्योंकि तुम्हारा मतिभ्रम स्पष्ट हो यह है कि इतना सब करनेके बाद भी हनुमान्जीमें गया है-अभिमानका अंकुर नहीं फूटा। इसका प्रमाण यही है कि जब भगवान् रामने हनुमान्जीसे पूछा— बोला बिहँसि महा अभिमानी। मिला हमहि कपि गुर बड़ ग्यानी॥ कहु कपि रावन पालित लंका। केहि बिधि दहेउ दुर्ग अति बंका।। मृत्यु निकट आई खल तोही। लागेसि अधम सिखावन मोही।। उलटा होइहि कह हनुमाना। मतिभ्रम तोर प्रगट मैं जाना॥ (रा०च०मा० ५।३३।५) तब हनुमान्जीने अपनी अभिमानहीनताका परिचय सुनि कपि बचन बहुत खिसिआना। बेगि न हरहु मूढ़ कर प्राना।। (रा०च०मा० ५। २४। २—५) देते हुए कहा— हनुमान्जीकी नौवीं उपलब्धि लंकादहन करना साखामृग कै बड़ि मनुसाई। साखा तें साखा पर जाई॥ है। जब हनुमान्जीकी पूँछमें आग लगा दी जाती है, नाघि सिंधु हाटकपुर जारा। निसिचर गन बधि बिपिन उजारा।। तब वे बहुत छोटा रूप धारण कर लेते हैं। सो सब तव प्रताप रघुराई। नाथ न कछू मोरि प्रभुताई॥ इससे उनके सब बन्धन ढीले हो जाते हैं। तब वे (रा०च०मा० ५।३४।७—९) बन्धनसे छूटकर सोनेकी अटारीपर चढ़ जाते हैं, जिससे इस प्रकार यह प्रमाणित हो जाता है कि हनुमान्जी सभी राक्षसियाँ भयभीत हो उठती हैं। इस प्रकार सर्वगुणसम्पन्न भक्तशिरोमणि हैं।

संख्या ५] सत्यका स्वरूप सत्यका स्वरूप (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज) सत्यका वास्तविक स्वरूप अनुभव करनेके लिये है। अतः जो सब प्रकारसे पूर्ण है, अर्थात् जिसमें किसी असत्यका स्वरूप जान लेना परम आवश्यक है; क्योंकि प्रकारका दोष नहीं है, वही सत्यका स्वरूप है। सत्यके जिसे रात्रिका ज्ञान नहीं होता, उसको भला दिनका ज्ञान स्वरूपका कथन नहीं किया जा सकता, बल्कि उसका किस प्रकार हो सकता है ? अत: असत्यका यथार्थ ज्ञान स्वयं अनुभव किया जा सकता है; क्योंकि कथन होनेपर ही सत्यका अभिलाषी सत्यको जान सकेगा। जो करनेवाले सभी साधन अपूर्ण हैं। अपूर्ण कभी पूर्णका असत्यको नहीं जान सकता, वह सत्यको भी नहीं जान कथन नहीं कर सकता। सत्यका स्वरूप व्यक्तित्वसे अतीत है। सत्य अपने आपको प्रकाशित करता है। सकता। संसारका सभ्य समाज गुणोंको सत्य और दोषोंको आवश्यकता उस वस्तुकी होती है, जिसके बिना असत्य कहता है; क्योंकि दोषोंपर गुण शासन करते हैं— किसी प्रकार न रह सकें। सभी महानुभाव स्थायी जैसे स्थिरता चंचलतापर, सदाचार दुराचारपर, योग प्रसन्नता चाहते हैं। जब संसारकी कोई अवस्था स्थायी भोगपर, प्रेम द्वेषपर, त्याग रागपर, संयम असंयमपर, प्रसन्नता नहीं दे पाती, तो उसका अभिलाषी संसारका आनन्द दु:खपर, चैतन्य जड़पर और अहिंसा हिंसापर। त्याग करनेके लिये मजबूर हो जाता है। यदि यह विचार किया जाय कि गुण दोषोंपर क्यों शासन यदि विचारशील पुरुष अपनी अभिलाषाओंकी करते हैं ? तो इसका उत्तर यही होगा कि गुण दोषकी जाँच करें, तो उनको यह भली प्रकार मालूम हो जायगा अपेक्षा अधिक स्वाभाविक हैं। जिस प्रकार आँखका कि अभिलाषाएँ केवल दो प्रकारकी होती हैं—एक देखना यदि स्वाभाविक ही रहे, अर्थात् उस क्रियामें कर्ता शारीरिक आवश्यकताकी पूर्तिके लिये और दूसरी सब किसी प्रकारका भाव न बनाये, तो फिर देखना कभी दोष प्रकारसे पूर्ण होनेके लिये। शारीरिक आवश्यकताकी नहीं कहा जाता। वह दोष तब बनता है, जब देखे हुए पूर्तिके लिये कर्म तथा संसारकी आवश्यकता है। रूपसे सुख प्राप्त करनेकी अभिलाषा उत्पन्न होती है। संसार तथा कर्मकी सहायतासे पूर्णता किसी प्रकार नहीं मिल सकती; क्योंकि संसारकी कोई भी अवस्था यद्यपि सुख मिल नहीं सकता, परंतु अविचारके कारण बेचारी आँख रूपमें सुखकी खोज करती है, इसलिये पूर्ण नहीं है। जिस प्रकार गोल चक्रमें चलनेवाला पथिक अन्तमें दुखी होती है, और जिससे दु:ख हो, वही दोष कभी मार्गका अन्त नहीं पाता, उसी प्रकार संसारकी ओर है । जानेवाला कभी शान्ति तथा पूर्णता नहीं पाता। अतः इन्द्रियोंकी स्थिरता हो जानेपर चंचलता मिट जाती स्थायी प्रसन्नता तथा पूर्णताके लिये सत्यकी आवश्यकता है। उस व्यक्तिको फिर संसार आदरकी दुष्टिसे देखता होती है। है और जो इन्द्रियोंका संयम नहीं कर सकता, उसको सद्भावपूर्वक सत्यकी अभिलाषा ही सत्यका मार्ग संसार निरादरके भावसे देखता है। इसी नियमके अनुसार है। जिस प्रकार बडी मछली छोटी मछलियोंको खाकर प्रत्येक गुण प्रत्येक दोषपर विजय प्राप्त कर लेता है। स्वयं मर जाती है, उसी प्रकार सत्यकी अभिलाषा सभी संसारको गुणयुक्त जीवनकी सर्वदा आवश्यकता रहती अभिलाषाओंको मिटाकर अन्तमें अपने आप मिट जाती है। यदि संसारमें गुणयुक्त जीवन व्यतीत करना हो तो है। बस, उसी कालमें सत्यका अनुभव हो जाता है। गुणोंका संग्रह करना परम आवश्यक है। सत्यकी प्राप्तिके लिये किसी संगठनकी आवश्यकता सत्यका वास्तविक स्वरूप गुण और दोष दोनोंसे नहीं, बल्कि सभी संगठन मिटाने होंगे। परे है; क्योंकि गुणोंके आ जानेपर भी कमी शेष रहती आपने अपनेको जिस कल्पनामें बाँध लिया है,

उसके अनुसार कर्म करो और अनावश्यक कार्योंका यहाँतक कि मन, बुद्धि आदितकका साथ छोडना होगा; त्याग करो। जो आवश्यक कार्य पूरा नहीं करते और क्योंकि संगठनका मिटाना ही सत्यका साधन है। अनावश्यक कार्योंको हृदयमें इकट्ठा रखते हैं, वे आगे-जिसको प्रसन्नता देनेके लिये संसार असमर्थ है, पीछेका व्यर्थ चिन्तन करते रहते हैं। अर्थात् जिसको भोगमें रोग, हर्षमें शोक, संयोगमें आवश्यक कार्य क्या है ? जिस कार्यके बिना न रह वियोग, सुखमें दु:ख, घरमें वन, जीवनमें मृत्युका सको, जिसे करनेका साधन प्राप्त हो जाय तथा जिसके अनुभव होता है, वही सत्यका अधिकारी है। करनेमें किसी प्रकारका भय न हो, वही आवश्यक कार्य भोग करनेसे शक्तिका ह्रास होता है। शक्तियोंके है। कर्ता अपने कर्तव्यका पालन करनेपर स्वयं उन्नति ह्रास होनेपर रोग बिना बुलाये आ जाता है, तब फिर कर जाता है। भोगकर्ता भोग करनेके लिये असमर्थ हो जाता है। ऐसी अवस्था आनेपर भोगसे जो हर्ष हुआ था, उससे कहीं जीवनकी परिस्थिति चाहे जैसी क्यों न हो, सत्यके अनुभवके लिये सभी मनुष्य समर्थ हैं। सत्य संसारकी अधिक शोक आ जाता है। इसी दुष्टिसे विचारशील हर्षमें शोकका अनुभव करते हैं। चाहे कैसा ही सुन्दर सहायतासे नहीं मिल सकता। यदि गुणोंका अभिमानी अपने गुणाभिमानको नहीं मिटा सकता, तो वह सत्यको भोग क्यों न हो तथा समाजके नियमके अनुकूल हो और भोगनेकी शक्ति भी हो, फिर भी शक्तिहीनता होनी नहीं पा सकता। यदि महान् पतित अपने पतित स्वभावको मिटा देता है, तो वह सत्यको पा लेता है। जिसे संसार अनिवार्य है। किसी प्रकार प्रसन्नता नहीं दे पाता, वह भी सत्यको योगसे शक्तियोंका विकास होता है तथा भोगनेसे विनाश होता है। योग और भोगमें केवल यही अन्तर पाकर अपार आनन्द पाता है। व्यक्तित्वकी गुलामीका त्याग ही सत्यका साधन है कि भोगके लिये शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धादि है। आप अपनेमें जो व्यक्तित्व अनुभव करते हैं, क्या विषयोंसे सम्बन्ध होता है और योगके लिये विषयोंका आपने कभी उसे देखा है ? तो आप यह कहनेके लिये त्यागकर विषयातीत अनन्त सत्यसे सम्बन्ध होता है। योग और ज्ञानमें केवल यही भेद रहता है कि मजबुर हो जायँगे कि हमने अपने व्यक्तित्वको सुनकर स्वीकार किया है, देखा नहीं है। योगी योगाभिमानके कारण परमतत्त्वसे अभिन्न नहीं हो पाता, इसलिये योगीमें अनेक प्रकारकी अद्भुत शक्तियाँ यदि यह कहो कि शरीरका व्यक्तित्व तो देखनेमें आता है तो उसका उत्तर यही होगा कि शरीर तो उद्धासित हो जाती हैं। भोगका अभाव होनेपर योग अपने संसारसे अभिन्न है, उसमें आपका क्या? जिस शरीरको आप आ जाता है। योग स्वतन्त्र तथा भोग परतन्त्र है: आप अपना समझते हैं. वह वास्तवमें सारे संसारसे एक क्योंकि योगके लिये संसारकी ओर नहीं देखना पडता। है। शरीर तथा संसार अंग तथा अंगीके समान हैं। जिस जिस प्रकार फलोंकी फसल खरीदनेके लिये केवल फलोंका दाम देते हैं और छाया बिना मूल्य ही मिलती प्रकार भारतवर्षके अनेक प्रान्त भारतवर्षसे अभिन्न हैं. उसी प्रकार शरीर संसारसे अभिन्न है। है, उसी प्रकार ज्ञान होनेपर योग स्वत: हो जाता है। यद्यपि ज्ञाननिष्ठ पुरुषको योगकी कोई आवश्यकता नहीं अत: सुने हुए व्यक्तित्वको विचाररूपी अग्निमें जला रहती तथापि असंगताके कारण योग अपने आप होता दो। व्यक्तित्वके मिटते ही गुलामीका अन्त हो जायगा और सत्यका मार्ग दिखायी देगा। सत्यका मार्ग इतना संकीर्ण है है। अत: जिसे योग और भोग शान्ति नहीं दे पाते, वही कि सत्यका अभिलाषी स्वयं अकेला ही जा सकता है। सत्यका अधिकारी है। परित्यज्य येऽन्यं देवमुपासते । तृषिता जाह्नवीतीरे कूपं वाञ्छन्ति दुर्भगाः॥ जो मृद्ध भगवान् वासुदेवको छोडकर दूसरे देवताकी उपासना करते हैं, वे मानो प्यासे होकर गंगाके तटपर कुंधंगाँ पंखोद्धको 🗗 is ç **्रांपा रिक्स्पाल** jhttps://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sh

भाग ९२

दयालु दीनबन्धुके बड़े विशाल हाथ हैं संख्या ५] दयालु दीनबन्धुके बड़े विशाल हाथ हैं [एक सत्य घटना] (श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट) महात्मा शिवरामिंकंकरके सम्बन्धमें पढ़ा था कि 'तुम्हारी बहनका फलदान चढ़ गया है। तुम छुट्टी एक बार डाकिया तारका मनीआर्डर लेकर उनके पास लेकर फौरन आ जाओ। सभी घरवालोंको लेकर तुम्हें पहुँचा। तारमें लिखा था कि 'भगवान् शिवने स्वप्नमें काशी जाना है। वहीं विवाह होगा। कन्यादान तुम्हें ही मुझसे कहा है कि अमुक स्थानपर मेरा भक्त शिवरामिकंकर करना है!' तीन दिनसे भूखा है! उन्हींके लिये मैं तारसे यह रुपया छुट्टीके लिये बड़ी दौड़-धूप की। अफसरोंने भेज रहा हूँ। इस नामके कोई सज्जन हों तो उन्हें इनकार कर दिया। पर जिसकी अर्जी मालिकके दरबारमें खोजकर उनके चरणोंमें यह तुच्छ भेंट पहुँचा दी जाय!' मंजूर हो जाय, उसकी अर्जी यहाँपर मंजूर हुए बिना कैसे कहते हैं कि एक बार शिवाजी महाराजके मनमें रह सकती है? यह भाव आ गया कि मैं इतने व्यक्तियोंको खिलाता हूँ। 'जरा देरको सोचिये कि आपकी बेटीकी शादी हो अचानक उनके गुरुदेवने वहाँ प्रकट हो एक भारी पत्थर तो क्या आप ऐसे मौकेपर रुक जायँगे?'— तुडवाया। देखा उसके भीतर थोडी-सी तरीके बीचमें बाल-बच्चेदार अफसर पिघल ही तो गया मके एक मेढक बैठा है। मुँहसे यह दलील सुनकर! शिवाजी लाजसे कटकर रह गये। जब उन्होंने विवाह सकुशल समाप्त हो गया। लड्का स्वस्थ, पूछा—'इस मेढकको भोजन कौन भेजता है?' सुशील, पढ़ता भी है, कुछ पैदा भी करता है। श्री म '''' आकाशवाणी' में काम करते हैं। दो हजार फलदानमें लगा और एक हजार अन्य विवाहकी आयुवाली एक बहनकी चिन्ता उन्हें ही नहीं सब फुटकर खर्चींमें! सभी घरवालोंको खाये जा रही है। पर, यह तीन हजार रुपया जा कहाँसे टपका? जमीन है, पर उसपर कई हजारका कर्ज लदा है। श्री म से एक सज्जनका मुकदमा चल रहा नौकरीसे अपनी गुजर किसी कदर चल जाय, इतना ही है। पानीके प्रश्नको लेकर फौजदारी हो चुकी है। बहुत! उनके बेटेने एक दिन उनसे कहा—'बाबू, मके पिछले साल बहनकी शादी एक जगह तय हो गयी थी, परंतु समयसे टीकेके लिये रकम एकत्र न हो पिताके आपपर बडे उपकार हैं। उन्होंने आपके प्राणोंकी सकी और वह सम्बन्ध टूट गया। भी रक्षा की है। उनसे और आपसे बड़ी दोस्ती थी। पैसेकी दुनियामें बिना पैसेवालोंको पूछता ही कौन उनकी बेटीकी शादी पैसेके अभावमें रुकी रहे, यह तो है। गरीबोंकी बेबसीपर किसे तरस आता है! दहेजकी ठीक नहीं। यह तो इज्जतका सवाल है। पानीका झगडा कौड़ी-कौड़ीको दाँतसे पकड़नेवाले लोगोंके हृदयमें दया अपनी जगह है, उसे तो इसमें बाधक नहीं बनना कहाँ ? चाहिये। इस मौकेपर तो आपको मकी मदद दीनबन्धु बिन दीनकी को 'रहीम' सुधि लेय। करनी ही चाहिये!! बेटेके मुँहसे भगवान् बोले। अभी-अभी उस दिन श्री म को तार मिला-पिताने खटसे तीन हजार रुपये निकालकर दे दिये!

[भाग ९२ संस्कृति की दो धाराएँ पर्यावरण-चिन्तन— (श्रीनन्दलालजी टाँटिया) उत्तरकाशी देवलोक—स्वर्गधामका मार्ग माना जाता कन्धेपर बैग लटकाये एक सम्भ्रान्त, शिक्षित-सा है। देवात्मा हिमालयकी पुण्य-स्थलीमें स्थित देवालयों और लगनेवाला युवक, जो गंगोत्री जा रहा था, उससे भेंट हुई। उन्नत आत्मावाले महात्माओंके दर्शनके इच्छुक यात्री प्राय: अभिवादनका उत्तर देते हुए, मेरे पूछनेपर उसने अपना परिचय इसी मार्गसे गुजरते हैं। प्रात:काल गंगाके तटपर टहलते हुए दिया। वह मुम्बईस्थित वित्तमन्त्रालयका एक वरिष्ठ ऐसे लोगोंका दर्शन, उनके साथ वार्तालाप और संक्षिप्त अधिकारी था। सरकारी नौकरी, गाड़ी और बँगलेकी समस्त परिचय वहाँ सहज ही सम्भव हो जाता था। जैसे साधुके वेषमें सुविधाओंके रहते उसके मनमें वैराग्य-जैसी भावना क्योंकर संसारी घूमते—भ्रमण करते रहते हैं, वैसे ही संसारी व्यक्तिके उपजी, यह विस्मयकी बात थी! युवकका नाम मोहन था, वेषमें साधु-आत्मावाले शिक्षित, सम्पन्न और वैराग्यकामी रेवेन्यू सर्विसकी परीक्षामें सफल होकर उसने वित्तमन्त्रालयमें व्यक्तियोंका मिलना वहाँ असामान्य बात नहीं होती है। उच्चपद प्राप्त किया था। पता नहीं क्या बात थी कि अल्पायुमें ही उसके मनमें संसार और उसके सुखोंके प्रति विरक्ति एक दिनकी बात है, एक दुबला-सा, संन्यासी-जैसा व्यक्ति मन और तनसे उत्साहित, सामान्यसे तेज गतिसे उत्पन्न हो गयी। सब कुछ छोड-छाडकर वह देवात्मा चलता हुआ मिला। मेरे अभिवादन करनेपर उसने अपनी हिमालयकी शरणमें आया था। मेरे साथ करीब दस दिनोंतक चाल धीमी कर ली। वह तेलगुभाषी था, हिन्दी समझ लेता उसका सान्निध्य रहा। उसके चेहरेपर ही नहीं, उसकी बातोंमें था। साथ चलते-चलते मैंने उससे पूछा, 'महाराज, रात भी एक प्रकार की दिव्यता थी, जो बड़े सन्तों और विरक्त कहाँ विश्राम लिया, भोजनकी व्यवस्था हुई क्या, अगर महात्माओंमें पायी जाती है। अपने व्यक्तिगत जीवनके बारेमें नहीं तो मुझे सेवा का मौका दें।' अपनी गतिसे चलते-कम-से-कम बताते हुए उसने कई ऐसी बातें कहीं, जो हर चलते उसने जवाब दिया, 'क्या, भोजन-भोजन करते हो, मनुष्यके जीवनसे जुड़ी होती हैं और जिनके बारेमें कथावाचक भोजन ही सब कुछ है क्या, गंगामैयाकी गोदमें बैठा हूँ, दूध और प्रवचनकर्ता भी बहुत कम कह पाते हैं। उसके सान्निध्यसे पीया, रात्रिमें गाछके नीचे सो लिया और अब खाना हुआ एक बात मुझे पुख्ता तौरपर महसूस हुई कि दिव्यता मनुष्यके हूँ। मैया सबकी सेवा करती है, सेवा कराना ही मेरे भाग्यमें भीतरसे आती है, ईश्वरकी कृपा होती है, तभी आती है, भी लिखा है। मैं उसकी सेवा करना चाहता हूँ, पर वह सेवा नाममात्रके सन्तोंके समागम अथवा आशीर्वादसे भी प्राप्त लेती ही कहाँ है ? वह तो देती ही देती है।' नहीं होती है। मुझे उपकृत करनेके पश्चात् वह पुन: गंगोत्रीकी इस संक्षिप्त वार्तालापके पश्चात् उस संन्यासीने यात्रापर चला गया। उसने पूरा शीतकाल भोजवासाके पास अपनी चाल तेज कर दी और आगे बढ़ गया। पीछे एक एक गुफामें, एक पहुँचे हुए महात्माके पास रहकर व्यतीत बड़ा प्रश्न छोड़ गया, जिसका उत्तर ढूँढनेकी कोशिश किया। उससे मिलनेका सौभाग्य उसके बाद प्राप्त नहीं आजतक कर रहा हूँ। हिमालयकी चोटीसे निकली हुआ। साधक और संन्यासी किसीसे सेवा लेनेमें हाथ जोड़ गंगामैया अगाध सिन्धुमें विलय होनेतक, धरतीपर दोनों लेते हैं। हाथोंसे प्राणिमात्रके लिये कल्याण-ही-कल्याण बिखेरती हमारे देशकी योग-साधना पश्चिमी मुल्कोंकी

हैं। मनुष्यके असंख्य पापोंको अपनेमें समाहित करती हैं। बदलेमें मनुष्य उन्हें क्या देता है? पाप और पाप-ही-पाप। संन्यासीके मनमें कदाचित् इसी बातका विक्षोभ रहा होगा। अगर हम लोग गंगामें पाप डालना यानी गंगाको प्रदूषित करना बन्द नहीं किये तो वह दिन दूर नहीं, जब गंगामैया हमारा पाप धोते-धोते थक जायँगी और खुद मैली ही नहीं, अस्तित्वहीन भी हो जायँगी।

ही आकर्षित करती है। मनकी शान्ति प्राप्त करनेके लिये
 भारत आयी पोलैण्डकी एक युवतीसे भी मेरी मुलाकात
 हुई। काफी धनाढ्य रही होगी। उसके साथमें दो गैसके
 र सिलेण्डर, आलू, चावल और अन्य भोजन–सामग्री थी।
 नवम्बरके महीनेमें आयी थी, तामझामके साथ गंगोत्रीके

भोगवादी संस्कृतिसे ऊबे हुए लोगोंको अपनी ओर सहज

निकट भोजवासाकी गुफामें गयी। मैंने अपने साथी

संस्कृति की दो धाराएँ संख्या ५] कर्मचारीके जरिये उसे गंगोत्रीतक पहुँचानेमें मदद की। गुजरना पडता है। माँ हजारों वर्षोंसे गोमुखसे गंगासागरतक मार्चके अन्तमें वह लौटी और पुन: अपने देश चली गयी। देशकी भूमिको धन-धान्यसे पुष्पित-फलित करती हुई वैराग्य और साधनाके संगमस्थल उत्तरकाशीमें भिन्न-भक्तोंका ताप-पाप निवारण करती हैं। ठाकुर रामकृष्ण भिन्न प्रवृत्तिके व्यक्तियोंसे मिलना मेरे मनमें सवाल उठाता स्वयं माथुरबाबुके साथ नौकापर यात्रा करते हुए काशीके था। तेलगुभाषी संन्यासीने कहा था कि 'दूध पीया'। उसने मणिकर्णिकाघाटका दृश्य देखकर विभोर हो गये और दुध पीया अथवा गंगाजलका पान किया, यह एक प्रश्न-उन्हें सँभालना पड़ा। उन्हीं गंगामैयाकी हम दानवके जैसा था। हंस नीर-क्षीर-विवेक रखता है, मगर जो मनुष्योंमें रूपमें किस प्रकार हत्या कर रहे हैं। कालका विनाशकारी परमहंस होता है, उसके लिये नीर-क्षीरमें कोई अन्तर नहीं ताण्डव—माताका उग्ररूप हम लोगोंके लिये चेतावनी है होता है। पवित्र गंगाजलको वह 'क्षीर' समझकर ही ग्रहण कि अभी भी सँभल जाओ। प्रकृतिका उतना ही दोहन करो, जितना आवश्यक है। जगह-जगह सीमेन्टकी करता है। इस बातको स्वयंके विवेकसे समझा जा सकता है। दूसरा व्यक्ति मोहन था, सुखोंका भोग करनेकी उम्रमें बैरीकेटिंगके द्वारा गंगामैयाको बाँधकर खडे हैं और उसने सारे सुख त्याग दिये थे। सुखोंका छिन जाना और बेचारी माँ अपने पुत्रोंके लक्षणोंको देखकर बिलखती है। सुखोंको त्यागना अलग-अलग बात होती है। दोनोंमें बहुत गत वर्ष बदरीनाथ गया था, एकदम सब कुछ बदल ही गया है। हरियालीकी जगह सीमेन्ट-कंक्रीटकी अन्तर होता है। सुखोंका त्याग करनेवाला निश्चय ही महान् आत्मा होता है। फिर वह धनाढ्य विदेशी महिला थी, जो बडी-बड़ी बहुमंजिली इमारतें और बड़े-बड़े होटल खड़े मनकी शान्तिकी खोजमें संन्यास चाहती थी, मगर भौतिक किये जा रहे हैं। तीर्थस्थान, जहाँ ऋषि-मुनि पूजा करते थे—इनको भी हम लोगोंने अपने कुकृत्यसे अपवित्र कर सुख-सुविधाओंका त्याग करना उसके वशमें नहीं था। मानव मन कितना विचित्र होता है, सुखोंका त्याग करना है दिया। कुछ वर्षीपूर्व बंगाल कैडरके एक आई. ए. एस. तब भी अवचेतनमें उनके मोहसे उबर नहीं पाता है। जो अधिकारी की पुत्री और उनकी सहेलियाँ गोमुख गयी थीं उबर पाता है, उसे संन्यासकी जरूरत ही कहाँ रहती है ? और वहाँसे वे एक ट्रक टिनके डिब्बे तथा बोतलें इकट्ठा करके गंगोत्री लायीं। एक और प्रसंग बताकर इस अध्यायको शेष करना चाहूँगा। रात्रिके दस बजे होंगे, सोनेके लिये बिस्तरपर सोचिये, गोमुख—जो माँ भागीरथीका उद्गम-स्थल लेटा ही था। तभी खूब जोरोंसे तख्ता हिलने लगा। ऐसा है, वहाँ ट्रकभर कुडा! यह है भोगवादी संस्कृतिका एक अनुभव पहली बार मेरे जीवनमें हुआ। मैं अपने बीभत्स रूप! कहाँ गंगाको माँ मानकर उनकी सेवा करनेकी सचिवको, जिनकी कोठरी मेरी बगलमें ही है, पुकारने इच्छा, कहाँ गंगाजलको दूध मानना, कहाँ उनके तटवर्ती किसी वृक्षके नीचे लेटनेमें उनकी गोदका अनुभव, कहाँ लगा, किन्तु आवाज नहीं निकली। मैं पुन: लेट गया और फिर झटका लगा। नींद गहरी थी, अत: सो गया। प्रात: प्रथम श्रेणीके उच्च सरकारीपदका त्यागकर गंगातटस्थित उठकर देखा तो भयावह दृश्य! माँ गंगाका भीषणरूप गुफामें साधना और गंगोत्रीकी यात्रा करना, कहाँ पोलैण्डसे देखनेको मिला, जैसे महिषासुरका वध करते दुर्गाके शान्ति की खोजमें एक विदेशी युवतीका गंगातटपर आना रूपमें अवतरित हुई हों। चारों तरफ हाहाकार! और कहाँ तथाकथित भारतीयोंका ही गंगामाँके उद्गममें माँ गंगाको उनकी दानव संतानने कितना कष्ट जाकर ट्रकों कूड़ा फेंककर आना, जिसमें कि शराबकी बोतलें भी हों! ये हैं संस्कृतिके दो रूप-एक भक्ति-दिया है। माँ सब कष्ट झेलती रहीं कि कभी तो मेरा बालक सुधरेगा। गंगामाताके पवित्र जलको लोहेके बडे-भावनासे भरा हुआ गंगाको माँ माननेवाला और दूसरा माँ बड़े टरबाइनमें ले जाकर नीचे गिराना और इस प्रक्रियाको गंगाको मात्र बहता हुआ पानी मानकर उनका उपभोग अपनी बार-बार करना, माँको कितनी चोट आती है। मनमें मौज-मस्तीमें करनेवाला। मेरी समझसे प्राचीन तीर्थयात्राओं विचार आता है, गायकी हत्यामें एक छुरी लगायी खत्म। और आधुनिक पर्यटन-यात्राओंका यही मौलिक अन्तर है। किन्तु गंगामैयाको तो प्रतिक्षण तेज चाकुओंके बीचसे एक भक्ति-भावना-प्रधान है तो दूसरी भोग-भावना!

मेरे माँझी! (श्रीइन्दरचन्दजी तिवारी) मैं जप-तप-ज्ञान-ध्यान-कुछ भी नहीं जानता। अचानक प्राचीसे सूर्योदय हुआ, समग्र तम क्षणार्धमें मेरा मन भी किसी प्रकारके कर्मकाण्ड या इस प्रकारकी मिट गया है। पथ स्फटिक-सा स्पष्ट हो गया है। किसी साधनामें विशेष नहीं रमता। आकाशमार्गपर फैल गयी स्नेहकी, प्रेमकी लालिमा, में खोया रहता हूँ दुष्कर्मोंमें, डूबा रहता हूँ चहकने लगे वेदपाठी शिष्योंकी भाँति मादक स्वरोंमें कामिनी-कंचनकी चिन्तामें। दिन-रात दुर्विचारोंमें खोया पक्षीगण। बहने लगी प्रात: समीर। प्रेममय हो गयी रहता हूँ, परछिद्रान्वेषणमें गोते लगाता रहता हूँ। समस्त दिशाएँ। गुरु माँझी दुष्टिगोचर होने लगे विशाल दिन-रात काम, क्रोध, मोह, लोभ, ईर्ष्या, द्वेषके नाव एवं पतवार हाथमें लिये हुए भवसागरके किनारे। अन्तस्तलमें डूबा रहता हूँ। इन हाथोंसे केवल पापकर्म पास पहुँचते ही करने लगे प्रेमरस डूबा अनुपम ही होते हैं। प्रेमालिंगन। करने लगे प्रेमकी वर्षा, लगा लिया कण्ठसे, ऐसा लगा मानो युगोंसे प्रतीक्षामें खड़े हैं हमारे माँझी कि नेत्रोंसे निहारा करता हूँ केवल वही सब कुछ, जो नहीं देखना चाहिये। अब आयेगा मेरा भटका हुआ यात्री मेरी नावपर चढ़कर चलेगा पार। हाथ पकड़कर बिठाल लिया निज गोदमें करता रहता हूँ दिन-रात वही सब, जो नहीं करना माँझीने एक हाथमें पतवार तथा दूसरे हाथमें अपने चाहिये। खोया रहता हूँ कुविचारोंमें, करता रहता हूँ कुसंग, दुलारेको, चल पड़ी नौका, समाप्त हो गया द्वन्द्व, नष्ट पान करता रहता हूँ भक्ष्य-अभक्ष्य। हो गयी अनिश्चितताकी रात्रि। मेरे लिये संसारमें कोई आशा शेष नहीं रह गयी राहमें लहरोंने उछाल मारी, तूफान भी आया-है, ज्योतिके सब द्वार मेरे लिये बन्द हो गये हैं। ऐसा लगा नौका अब पलटी तब पलटी! मगरमच्छ एवं ज्ञानके सारे मार्ग अवरुद्ध हो गये हैं। अज्ञानका विशाल भयावह मछलियोंने भी आक्रमण किये। पर सब घनघोर तिमिर व्याप्त है। समग्र दिशाओंमें नहीं सुझाता कुछ निष्फल! फलित हुआ केवल माँझी, पार पहुँचनेका है पसारा हाथ। कार्यक्रम। वाह रे मेरे माँझी, कौन था समर्थ तेरे सिवा मुझे गरज रहे हैं अहंकारके घनघोर बादल। चमक रही है कामिनी-कंचनके लोभकी बिजली। नाच रहे हैं पुत्र, पहुँचानेमें उस पार? कौन था समर्थ जो उत्ताल तरंगों पुत्री, परिवारजनोंकी प्राप्तिके मयूर, कूक रही है कोयल-भयावह तूफानोंके बीच इतनी कुशलताके साथ पार करा सी कोमल लोकैषणा, मोहपाशमें बद्ध करनेवाली अविद्या देता यह भवसागर? नारि, पिउ कहाँकी तान लगाकर कूक रहा है पपिहरा। वन्दन है तेरा माँझी! अभिनन्दन है तेरा माँझी! पूजन-भजन-अर्चन है तेरा माँझी! प्रभुकी यादमें विरही न बनाकर सांसारिक वैभव, यश, कामिनी-कंचनकी प्राप्तिके लिये विरही बना रहा है। लगाता हूँ तेरी पगधूरि माथेसे, अब तो नाचूँगा तेरे टर्रा रहे हैं दम्भके वाचाल दादुर। इधर-उधर भाग रहे साथ, गाऊँगा तेरे साथ, बहकूँगा तेरे साथ, चहकूँगा तेरे हैं भोगोंके सर्प। साथ। अब न छोड़ देना मुझे तपती रेतपर कहीं पुन: मुझे उबारे कौन बचाये कौन इस भूमित जीवको ? Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sha

भारतीय संस्कृतिमें पशु-पक्षियोंका महत्त्व संख्या ५] भारतीय संस्कृतिमें पशु-पक्षियोंका महत्त्व [पश्-पक्षियोंकी हत्या महान् अपराध और पाप] (श्रीइन्द्रलालजी शास्त्री विद्यालंकार) भारतवर्षकी जो सम्पत्तियाँ और निधियाँ हैं, उनमें संस्कृतिमें पर्याप्त है। पश्-पक्षियोंका स्थान भी पर्याप्त ऊँचा है। इस सम्पत्तिकी जैन-धर्ममें चौबीस तीर्थंकर माने जाते हैं। इन द्रिष्टिसे भारत अन्य देशोंसे बहुत अधिक समृद्ध है। कहा चौबीसमें आधेसे अधिक तीर्थंकरोंकी पहचानके लिये जाता है कि सारे विश्वमें जितने पशु हैं, उनका चतुर्थांश चिह्न पश्-पक्षियोंके ही हैं। कहा जाता है कि जब केवल भारतमें है। भारतमें पाँच सौ प्रकारके स्तनीय तीर्थंकर भगवान् जन्म लेते हैं तब सौधर्म स्वर्गके इन्द्र वर्गके पशु पाये जाते हैं। भारत अपनी इस सम्पत्ति या स्वर्गसे उतर भगवान्के दर्शनके लिये आते हैं और सबसे धरोहरकी रक्षा 'अहिंसा परमो धर्मः' इस सिद्धान्तके पहले अंगुष्ठ देखते हैं। उस अंगुष्ठमें जो चिह्न उन्हें आधारपर ही करता रहा है। दीखता है, वही चिह्न उन भगवान्का माना जाता है। जैसे ऋषभदेव भगवान्के बैलका, अजितनाथ तीर्थंकर भगवान्के वैदिक सनातन धर्ममें पशुओंकी पूजा भी होती आयी है। जैसे दशहरे (विजयादशमी)-पर घोडेका हाथीका, सम्भवनाथ भगवान्के घोडे़का, अभिनन्दननाथ पूजन, गोवर्धन-पर्वपर गाय-बैलका पूजन और नागपंचमी स्वामीके बन्दरका, कुंथुनाथ स्वामीके बकरेका, भगवान् महावीर स्वामीके सिंहका चिह्न है। और भी अनेक पर्वपर साँपोंकी पूजा की जाती है। प्रात:काल नकुल (नेवले)-के दर्शनको महान् मंगलकारी और विजयादशमीके तीर्थंकर भगवान्के विविध पशु-पक्षियोंके चिह्न हैं। दिन नीलकण्ठके दर्शन कर लेना शुभ शकुन माना जाता तीर्थंकर भगवानुका अभिषेक-पूजन करते समय इनका भी पूजन अभिषेकादि हो जाना स्वाभाविक है। है। शिवरात्रिपर नन्दी (बैल)-की पूजा की जाती है। प्रात:काल हाथीके दर्शन करना महान् मंगलकारी भगवान्को इन्द्र प्रसूतिस्नान करानेके लिये जब पांद्रुकशिलापर ले जाते हैं तब ऐरावत हाथीपर ही माना जाता है। 'यशस्तिलकचम्पू' नामक जैन महाकाव्यमें हाथीको परमेष्ठी-पुत्र बतलाया गया है और जो प्रात:काल बिठाकर ले जाते हैं। धरणेन्द्र (सर्प)-ने भगवान् उठते ही हाथीको देखता है और उसकी पूजा (सत्कार) पार्श्वनाथपर आये हुए उपसर्गको भक्तिवश दूर किया करता है, उसके सारे विघ्न नष्ट हो जाते हैं—ऐसा था। भगवान् पार्श्वनाथके चिह्न भी सर्पका ही है। इस बतलाया गया है। दृष्टिसे भी पश्-पक्षियोंका महत्त्व बहुत बढ़ जाता है। शान्तिनाथ स्वामीके हरिणका चिह्न है। हरिषेणबृहत्कथा-अथ प्रभाते परमेष्ठिनन्दनान्समर्च्य पश्यन् करिणो नरेन्द्रः। कोशमें लिखा है— दुःस्वप्नदुष्टग्रहनष्टचेष्टाः प्रयान्ति नाशं सहसा नृपस्य॥ (यशस्तिलकचम्पू, पूर्वखण्ड) यतिराजवाजिकुञ्जरगोमयवरकुम्भवृषवरा ह्येते। अपने-अपने गृहद्वारोंपर हाथी-घोड़ोंके चित्र सिद्धिकरा: सर्वकार्येषु॥ आगमने निष्क्रमणे लिखवाना इसी मंगलदायक सूचनाका स्रोत है। गमन और प्रवेशके समय यदि सामने मुनि, राजा, सनातन वैदिक धर्ममें अनेक देवी-देवताओंके घोड़ा, हाथी, गोबर, कलश और बैल दीख पड़े अर्थात् वाहन पशु-पक्षी ही बतलाये गये हैं। जैसे शीतलाका ये सामने आ जायँ तो जिस कार्यके लिये गमनागमन

वाहन गर्दभ, गणेशजीका वाहन मूषक, ब्रह्माजीका हंस, विष्णुका गरुड़, महादेवका बैल, कार्तिकेयका मयूर, इन्द्रका ऐरावत हाथी, लक्ष्मीका उलूक, महाकालीका सिंह। इस तथ्यसे भी पश्-पक्षियोंका महत्त्व भारतीय

ोका हंस, किया जाय, वह सिद्ध हो जाता है। का मयूर, इसी ग्रन्थमें और भी लिखा है— कालीका **श्रमणस्तुरगो राजा मयूरः कुञ्जरो वृषः।** भारतीय **प्रस्थाने वा प्रवेशे वा सर्वे सिद्धिकराः स्मृताः॥**

भाग ९२ श्रमण, (पवित्र 'साधु'), घोड़ा, राजा, मोर, हाथी, भक्ति रखते हुए इस महान् पुण्य कार्यमें तन-मन-धनसे बैल-ये प्रस्थान और प्रवेशमें सामने आ जायँ तो पूरा-पूरा सहयोग दे। सारे संकट पापोंके फल हैं। सिद्धिकारक होते हैं। इसीलिये नये पापोंका समावेश न होने दें और पुराने और भी— पापोंकी निर्जरा की जाय। तभी यह संकट दूर होगा। सापराध शत्रुके मारनेमें हिंसा नहीं, परंतु निरपराध मूक ज्ञानी च योगी च तपोधनश्च हितैषी प्राणियोंको मारनेमें तो हिंसा ही है। शूरोऽथ राजाथ सहस्रदश्च। ध्यानी च मौनी च तथा शतायुः ज्योतिषशास्त्रकी बारह राशियोंमें मेष (भेडा), सन्दर्शनादेव धुनन्ति पापम्॥ वृष (बैल), कर्क (केंकड़ा), सिंह, वृश्चिक (बिच्छू), ज्ञानी—विद्वान्, योगी (साधु-संत), तपस्वी, शूरवीर, मीन (मछली) और मकर (मगरमच्छ)-इन सात राजा, हजारोंका दान देनेवाला, ध्यानी, मौन धारण राशियों या नक्षत्रोंके नाम पश्-पिक्षयों-जैसे और इनके करनेवाला और सौ वर्षकी आयुवाला—इनके दर्शनमात्रसे आकार भी वैसे ही हैं। इन राशियोंके स्वामी ही ग्रह और ही पाप नष्ट हो जाते हैं अर्थात् ये सब दर्शनमात्रसे ही दो उपग्रह (राहु-केतु) हैं। जब हम इनको मारेंगे तो पापको नष्ट करनेवाले हैं। इन ग्रहों-उपग्रहोंका नाराज हो जाना और दु:ख देना इस शकुन अथवा निमित्तशास्त्रसे भी पशु-पक्षियोंका स्पष्ट है। अतः किसी भी प्राणीको मारनेका संकल्पतक महत्त्व, उपयोगिता, मंगलकारणता आदि सुस्पष्ट है। नहीं करना चाहिये। भगवान् श्रीकृष्णको गोपाल कहते हैं। बहुत-से जब भारत-जैसे देशमें उसके सत्ताधारियोंद्वारा इन पश्-लोग अपने पुत्रका नाम गोपाल रखते हैं। गौका अर्थ पक्षियोंको मार डालने—खाने, पकाने, पीड़ा देनेके समाचार सामने आते हैं, इनको मारने-काटनेके लिये गाय ही नहीं है; अपितु चलने-फिरनेवाला प्राणी है। 'गच्छतीति गौः' जो चले-फिरे सो गौ। इस प्रकार गौ बड़े-बड़े कसाईखानोंका संचालन और नव संस्थापन सुना जाता है, तब महान् दु:ख होता है और चिन्ता होती शब्दका अर्थ समस्त सचर प्राणी है। किसी भी प्राणीको है कि भारत आगे होकर अपनी सम्पत्ति और निधिको न सतानेवाला ही गोपाल हो सकता है। गोपाल नाम भगवान् श्रीकृष्णका प्रतीक है। भगवान् श्रीकृष्ण प्राणिमात्रके नष्ट कर रहा है। वास्तवमें तथ्य यह है कि बहुत-से सत्ताधारियोंको भारतीय शास्त्रों, भारतीय संस्कृति, भारतीय रक्षक थे। श्रीकृष्ण विष्णुके ही रूप हैं। विष्णुका अर्थ महत्त्व, आध्यात्मिक रहस्य और परम धर्म अहिंसाका व्यापक है। आत्मा सभी प्राणियोंमें होनेसे व्यापक है। जरा-सा भी ज्ञान नहीं है। यदि है तो उसपर विश्वास इसीलिये जो वैष्णव होते हैं, वे किसीकी हिंसा नहीं नहीं है। यदि उक्त चीजोंका ज्ञान और उसपर विश्वास करते, मांसाहारी भी नहीं होते। होता तो भारत सब देशोंका इस समय भी पुज्य और और स्थानोंका तो पता नहीं। राजस्थानके अनेक शिरोमणि नि:संदेह माना जाता। प्रान्तोंमें मकानको अधिकतर 'गुवाडी' कहा जाता है। यद्यपि भारतमें वास्तविक साधु-संतोंकी बहुत कमी 'गुवाडी' का शुद्धरूप 'गोवाडी' है। अर्थात् जहाँ होती जा रही है तो भी इस समय जो साधु-संत यत्र-गाय-भैंस, बकरी-बकरे, भेड़ आदि भी मनुष्योंके साथ तत्र विद्यमान हैं—उनके सद्भाव और प्रभावसे यदि ही रहते हों। वास्तवमें मानवजीवन पशुजीवनपर ही भारतीय जनताकी उनपर आस्था रही तो इसमें सन्देह आधारित है। नहीं कि भारतीय संस्कृति अक्षुण्ण रहेगी। भारतीय कबूतरोंकी हवा लगनेसे क्षयरोग दूर हो जाता है। जनताका कर्तव्य है कि वह पश्-पक्षियोंकी हिंसासे इसीलिये धार्मिक लोग कबूतरोंको चुग्गा डालते हैं; परंतु विरक्त होकर वास्तविक, सच्चे तपस्वी साधु-संतोंके प्रति छोटे दिलवाले गर्हणीय स्वार्थी कहते हैं कि कब्रूतर

संख्या ५] भारतीय संस्कृतिमें प	शु-पक्षियोंका महत्त्व ३३
**************************************	**************************************
आदि पक्षी हमारा अन्न खा जाते हैं, अत: इन्हें मार	नये-नये खुलें, यह अशोकचक्रका अपमान या उसके
डालना देशहित है। जो कबूतर शान्ति और संवादका	साथ विश्वासघात भी है। उस समय राजाज्ञाके अनुसार
दूततक प्रसिद्ध है, क्षयरोगका नाशक है और भी उसके	वनोंमें स्वार्थवश या अज्ञानतासे या प्रमादवश आग
अनेक उपकार हैं, वह दो-चार अनाजके दानोंसे अपना	लगाना दण्डनीय अपराध माना जाता था। आज तो प्राय:
पेट भर ले, उसका यह बदला कि उसे जानसे मार दिया	लोग सिगरेट पीकर दियासलाई डाल देते हैं और आग
जाय। कितनी कृतघ्नताकी पराकाष्ठा है!	लग जाती है। जिसका कारण हमारे कहने और
भारतीय संस्कृतिमें प्राणिमात्रके संरक्षणकी यत्र–	दिखानेमें तो अहिंसा है; परंतु कृतिमें नहीं है।
तत्र आज भी प्रणाली प्रचलित है। जैसे चींटियोंको	मुगल बादशाह शिकारके बड़े शौकीन थे, तो भी
आटा, मछलियोंको आटेकी गोलियाँ, गायोंको ग्रास एवं	उनके समयमें वन्य जीवोंका संरक्षण होता था; परंतु अब
घास, चीलोंको पकौड़ी-बड़े, कुत्तोंको रोटी और तो क्या	तो हाथीतक मार दिये जाते हैं। अकबर सम्राट्ने हजारों
साँपोंतकको दूध पिलाया जाता है। श्राद्धोंके दिनोंमें तो	चीते पाल रखे थे। अब शेर-चीते वनोंमें भी नहीं रहे।
कौओंको भी खूब खिलाया जाता है।	सबको मार दिया गया। भारतमें अंग्रेज आये, आबादी
राजा दिलीपके द्वारा नन्दिनी गायकी रक्षाके लिये	बढ़ने लगी। भूमिकी आवश्यकता हुई। वनोंको नगर
सिंहके सामने अपना शरीर भी अर्पण करना प्रसिद्ध है।	बनानेके लिये पशुओंका विध्वंस होने लगा। कुछ लोग
बाज (इन्द्र) जब कबूतर (अग्नि)–को खाने आया	आखेटकर इनको मारने लगे। काठियावाड़में एक बड़े
तो राजा शिबिने कबूतरके प्राण बचाकर बाजको	अंग्रेजने ८० शेर मारे, एक ही दिनमें १० मारे। इन
उसकी क्षुधापूर्तिके लिये अपना शरीरांग काटकर देना	शेरोंको मारनेके लिये भी सैकड़ों पशु मारे गये; क्योंकि
उचित समझा।	शेरको बुलानेके लिये बकरे-भैंसे आदि आनेके स्थानपर
शरीरकी सुन्दरताके लिये भी पक्षियोंके अंगोंकी	बाँध दिये जाते हैं ताकि उस लोभसे वे आ जायँ और
उपमा दी जाती है। जैसे नारीके चंचल नेत्रोंको हरिणके	पीछे उनको गोली मारी जा सके।
नेत्रोंकी उपमा दी जाती है। कटिको सिंहकी कटिकी	यदि हम इन वन्य जीवोंकी हत्याकी ओरसे भी
उपमा दी जाती है।	नजर ओझल कर लें तो भी निरपराध पशु-पक्षियोंके
स्वामिभक्तिमें कुत्तेकी, चेष्टामें कौएकी, ध्यानमें	मारने-काटनेकी तो कोई आवश्यकता ही नहीं है। ये
बगुलेकी सदृशताको अच्छा समझा जाता है। कालिदासके	प्राकृतिक खाद्य पदार्थ भी नहीं होते हैं। इनके रहनेसे
अभिज्ञानशाकुन्तल आदि ग्रन्थोंसे विदित होता है कि	खाद्य-उत्पादन बढ़ता है। पोषक तत्त्व घी, दूध, दही,
ऋषियोंके आश्रममें अभयारण्य भी होते थे। जहाँ किसी	मक्खन इन्हींसे मिलते हैं। हमारे पूर्वजोंने इनका महत्त्व
पशु-पक्षीको कोई नही मार सकता था और सारे पशु-	समझा है; उनके ये सहयोगी रहे हैं—हमारे भी हैं।
पक्षी आनन्दसे रहते थे। यदि कोई पशु उन्मत्त या निर्दयी	सत्ताधीशोंका कहना है कि सारे विश्वमें जितने
होकर अन्य पशु–पक्षियोंको सताता था तो उसे भी	पशु हैं उनका चतुर्थांश केवल भारतमें हैं; इसलिये इनसे
अभयारण्यसे बाहर लाकर ही दण्ड दिया जाता था,	खाद्य समस्या हल करनी चाहिये। प्रथम तो यह कहना
जिससे अन्य पशु–पक्षी भयभीत न हों।	ही असंदिग्ध प्रतीत नहीं होता कि भारतमें इतने पशु हैं।
उत्तरी भारतमें ईसासे लगभग ३०० वर्ष पहले	यदि हैं तो दूध चालीस रुपयेका एक लीटर क्यों मिलता
सम्राट् अशोकका राज्य था। तब शिकार खेलनेका पूर्ण	है ? घी सात सौ रुपये किलो क्यों है ? जब दूध-घी
निषेध था। आजके राष्ट्रध्वजमें अशोकचक्रका प्रतीक	आदिकी इतनी कमी है तो इनकी संख्याको मार-काटकर
चक्रचिह्न होते हुए भी राज्यस्तरपर कसाईखाने चलें और	और भी घटाना मूर्खता और वज्रपाप तथा अपराध नहीं

है तो और क्या है? यह भी कहा जाता है कि इस किया जा सकता है। आवश्यकतासे अधिक नर-

भाग ९२

देशकी गाय औसतन २०० लीटर, भैंस ६०० लीटर प्रति मादाओंको अलग रखनेकी व्यवस्था करना कठिन नहीं वर्ष दूध देती है जब कि इंगलैंडकी गाय-भैंस इसका है। यह प्रश्न हो कि इससे तो काटकर खा लेना ही उन्नीस गुना दुध देती है। यह कहकर भी इनकी लाभकारी होगा—परंतु यह भौतिक लाभ मानवताका

अनुपयोगिता बतलाकर जो दो सौ लीटर और छ: सौ घातक है, भारतकी आध्यात्मिकताका विनाशक है, लीटर देती हैं, उनको भी सर्वथा नष्ट करनेके लिये कृतघ्नताका द्योतक है। सारे जीवन किसीसे लाभ

लीटर देती हैं, उनको भी सर्विथा नष्ट करनेके लिये कृतघ्नताका द्योतक है। सारे जीवन किसीसे लाभ उनकी हत्या की जाती है जबकि चारा, घास, खली उठाकर अन्तमें उसे मार-काटकर खा जाना घोर आदिका प्रचुरतासे उत्पादन बढ़ाना चाहिये। ध्येय बतलाया कृतघ्नता, पाप और अपराध है और उन प्राणियोंका

आदिका प्रचुरतासे उत्पादन बढ़ाना चाहिये। ध्येय बतलाया कृतघ्नता, पाप और अपराध है और उन प्राणियोंका जाता है उत्पादन बढ़ाना और नष्ट कर दिया जाता है अप्रतीकार अभिशाप लेना है। जिन्हें पालना उन्हें ही खा

उत्पादनके साधनको। क्या यह बुद्धिमानी है? जाना, कितना अनैतिक कार्य है! अब तो ऐसे कसाईखाने खोलनेकी योजना भी जो पशु-पक्षी हमारे देवी-देवताओंके वाहन हों, कार्याधीन है, जिससे हजारों पशु एक घण्टेमें ही कट चिह्न हों, नर-नारियोंके शरीरके उपमान हों, नक्षत्ररूप

जायँ। कसाईखानोंसे तो घी, दूध, दही, अन्न आदि सभीका हों, एवं और भी अनेक प्रकारसे सम्मान्य और विधेय उत्पादन घटेगा। इसलिये भारत सरकारको चाहिये कि हों, और तो क्या जिनकी पूजातक होती हो—वे किसी

कसाईखानोंकी योजना बन्द कर दे और जो कसाईखाने भी दशामें वध्य नहीं हो सकते और न भक्ष्य ही हो सकते चल रहे हैं, उनको भी शीघ्रातिशीघ्र बन्द कर दे। हैं। पशु-पक्षियोंकी जीवनरक्षाका धार्मिक दृष्टिसे ही

यह आशंका व्यर्थ है कि पशु बढ़ गये तो क्या उपयोग नहीं है अपितु खाद्य-समस्याकी दृष्टिसे भी बड़ा खायँगे। पशु अन्न नहीं खाते, वे घास खाते हैं। अन्नसे भारी उपयोग है। पशु-जीवन मानवजीवनका बड़ा भारी पाँचगना घास अन्नके साथ ही पैटा हो जाती है। अलग सहयोगी है। पशुजीवन कृषिदास उत्पादनके सम्बन्धमें

पाँचगुना घास अन्नके साथ ही पैदा हो जाती है। अलग सहयोगी है। पशुजीवन कृषिद्वारा उत्पादनके सम्बन्धमें घास भी हो जाती है। घास परिश्रमके बिना ही पैदा हो परावलम्बन और परतन्त्रताको मिटानेवाला है। प्रत्येक

घास भी हो जातों है। घास परिश्रमके बिना हो पैदा हो। परावलम्बन और परतन्त्रताको मिटानेवाला है। प्रत्येक जाती है। इसलिये पशुओंके लिये अलग खाद्यकी चिन्ता। दृष्टिकोणसे पशु-पक्षियोंका संरक्षण ही उचित है। करना अनावश्यक है। पक्षी भी पत्ते आदि ही खा लेते। उनका वध और उसके लिये कसाईखाने चलाना असीम

प्रेरक-प्रसंग— जो तोकौं काँटा बुवै, ताहि बोउ तू फूल!——

समर्थ रामदास शिष्योंके साथ शिवाजी महाराजके पास आ रहे थे। रास्तेमें ईखका खेत पड़ा। शिष्योंने गन्ने तोड़-तोड़कर चूस लिये। खेतका मालिक दौड़ा। उसे देखकर शिष्य भाग गये। केवल समर्थ ही एक

गन्ने तोड़-तोड़कर चूस लिये। खेतका मालिक दौड़ा। उसे देखकर शिष्य भाग गये। केवल समर्थ ही एक पेड़के नीचे बैठे थे। मालिकने सोचा—इस गोसाईंने हमारे गन्ने तुड़वाये हैं। उसने उन्हें खूब पीटा और वहाँसे

भगा दिया। धरित्रीके समान अन्तरमें अपार क्षमा-शान्ति रखनेवाले समर्थने चूँतक नहीं की। वे शिवाजी महाराजके पास पहुँचे। समर्थकी पीठपर कोड़ोंके घाव देख उन्होंने जाँच करवायी। ईखका

मालिक गिरफ्तारकर उनके सामने लाया गया। शिवाने पूछा—'गुरो! इसे क्या दण्ड दूँ?' समर्थने शिवाजी महाराजसे उसे क्षमा कर देनेके लिये कहा। इतना ही नहीं, उन्होंने ईखका वह खेत

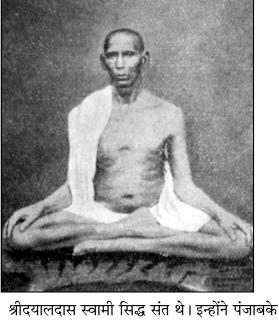
उसे इनाममें दिलवा दिया। Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sh

लक्ष्मी कहाँ रहती हैं ? संख्या ५] लक्ष्मी कहाँ रहती हैं ? (धर्मभूषण पं० श्रीमुकुटविहारीलालजी शुक्ल) आज लक्ष्मीके जितने उपासक हैं, उतने किसी और पूरे तौरपर घर, वस्त्र, आभूषण और फरनीचरकी सफाई की जाती है और दीपदानद्वारा प्रकाश किया जाता है। देवी-देवताके नहीं हैं। स्त्री हो या पुरुष, धनवान् हो या निर्धन—सभी लक्ष्मीके कुपाकांक्षी हैं। कारण यह है कि इसी सफाई और प्रकाशको लक्ष्मी महारानीके स्वागतके इस युगमें जितना मान धनवान्का होता है, विद्वान्का नहीं लिये लोग पर्याप्त समझते हैं। परंतु यह उनकी भूल है। होता। यह भ्रम इतना विस्तार कर गया है कि 'मालदार' इस प्रकारकी बाहरी सफाई और प्रकाशकी आवश्यकता आदमी और 'बडे' आदमी शब्द हमारी रोजकी बोल-अवश्य है, परंतु यही पूर्ण नहीं है। पूर्ण सफाईके लिये चालमें पर्यायवाची हो गये हैं। यदि कोई व्यक्ति तो दिलकी सफाई करना और आत्माको प्रकाशवान् बनाना अत्यन्त आवश्यक है; क्योंकि बिना इसके ईमानदारी, योग्यता और मेहनतके द्वारा धनवान् होता है तो कोई आपत्ति नहीं है; परंतु आजकल तो कोई यह लक्ष्मीका स्थायी वास नहीं होता। दिलकी सफाईका मतलब है निर्मल मन—जिसमें कपट-छलको कोई स्थान जाननेकी जरा भी चिन्ता नहीं करता कि किन साधनों और उपायोंसे अमुक व्यक्ति धनवान् बना है। चाहे रिश्वत न हो, विचारों, वचनों और कर्मोंमें समानता हो, किसीके ले, चाहे कम तौले, चाहे ब्लैक मार्केटिंग करे, चाहे झुठे साथ दुर्व्यवहार, विश्वासघात न हो। सच्चा निष्कपट मुकदमे लड़कर दूसरोंका धन अपहरण करे, चाहे लूट-हितपूर्ण नम्र व्यवहार हो, सच्ची तिजारत हो। बिजलीकी खसोट, चोरी-ठगी, मार-हत्या करे, चाहे खाने-पीनेकी रोशनी और दीपदानसे घरमें तो उजाला हो जायगा और वस्तुओं तथा दवातकमें दूसरी चीजें मिलाकर देशका घर सुहावना भी लगेगा। पर इससे अन्दर प्रकाशकी ज्योति स्वास्थ्य नष्ट करे-पैसेवाला होना चाहिये। ऊपरसे नहीं जगेगी, इसके लिये—असली आनन्दकी प्राप्तिके देखनेमें तो यही प्रतीत होता है कि यदि सांसारिक ऐश्वर्य लिये पवित्र विचार और शुद्ध भावनाके द्वारा हृदयमें दैवी भोगना और प्रतिष्ठा बनाना चाहते हो तो चाहे जैसे भी प्रकाश उत्पन्न करना होगा, तभी परमानन्द प्राप्त होगा। हो, मालदार बनो। परंतु यदि गहराईसे देखा जाय और इस प्रकारकी सफाई और शुद्धिसे जब हृदय—आत्मा पुराने उदाहरणोंको एकत्रित किया जाय तो हमें इस ओतप्रोत हो जायगा, तब वह व्यक्ति दैवीशक्तिसे सम्पन्न परिणामपर पहुँचना पडेगा कि बेईमानीकी कमाई कुछ हो जायगा और लक्ष्मीके नित्य वासके उपयुक्त स्थान भी ही दिन अपना चमत्कार दिखाती है, फिर लोप हो जाती वही होगा। गोस्वामी तुलसीदासजीने सत्य ही कहा है— है। धन तो गायब हो ही जाता है, उसके साथ-साथ जहाँ सुमति तहँ संपति नाना। जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना॥ कथित प्रतिष्ठाकी भी इतिश्री अवश्य हो जाती है। अब प्रश्न यह है कि हृदयकी सफाई और प्रकाशके बेईमानीद्वारा लोग जब धनवान् बनते हैं, तब दूसरे लिये क्या करना आवश्यक है ? सबसे जरूरी यह है कि गीताके आदेशानुसार मनुष्यको यथालाभ सन्तुष्ट होना लोग कहते हैं—'लक्ष्मी महारानीकी उनपर बड़ी कृपा है, लक्ष्मीका उनके यहाँ वास है।' परंतु उनका यह समझना चाहिये। सन्तोष करनेसे अभिप्राय यह नहीं है कि मनुष्य भूल है। लक्ष्मी कदापि चोरों, लुटेरों और बेईमानोंके यहाँ हाथ-पर-हाथ धरकर बैठा रहे और फाँके करके जीवन निवास नहीं कर सकतीं। उनके यहाँ तो मायाका राज्य व्यतीत करे। सन्तोषका अर्थ यह है कि अपनेको पूरा है, जिसका **'चार दिनोंकी चाँदनी, फेर अँधेरा पाख**' परिश्रम करनेसे जो मिल जाय, उसके लिये भगवानुको की भाँति कुछ दिनोंतक वास रहता है, फिर कष्ट और धन्यवाद दे और उसीसे अपनी गृहस्थीका काम चलाये। ज्यादा आमदनीसे आदमी मालदार नहीं बनता, यदि विपत्तिरूपी अन्धकार उन्हें सहना पड़ता है। लक्ष्मी तो सात्त्विकी देवी हैं, उनके वासके लिये खर्चपर नियन्त्रण न हो। आय चाहे कितनी कम हो, यदि सफाई और प्रकाशकी बडी आवश्यकता है। दीपावलीपर खर्च उसके अन्दर ही किया जाय और कुछ बचाया भी इसीलिये घर-घरमें लक्ष्मीके आवाहन और पूजनके लिये जाय तो उस दशामें धनकी बचत अवश्य होती है और

३६ कल्प्स्यस्यस्यस्यस्यस्यस्यस्यस्यस्यस्यस्यस्य	गण
थोड़ा–थोड़ा करके काफी धन इकट्ठा हो जाता है, जिसे	अर्थात् जिस घरमें हवन किया जाता है, गौकी सेवा
देखकर आश्चर्य होता है। आवश्यकता इस बातकी है	की जाती है और ब्राह्मणोंका सत्कार होता है, समयपर
कि अपनी इन्द्रियों और इच्छाओंपर नियन्त्रण रखा जाय,	देवताओंकी पूजा की जाती है और उनको फूल चढ़ाये
मितव्ययी होना बुरी बात नहीं है। बल्कि एक सद्गुण	जाते हैं, उस घरमें मैं सदा वास करती हूँ। मैं बराबर
है, इसी प्रकार अन्य सद्गुण भी हैं, जिनसे बुद्धि निर्मल,	वेदाध्ययन करनेवाले ब्राह्मणोंके निकट रहती हूँ। अपने
हृदय शुद्ध और आत्मामें प्रकाश होता है और जो लक्ष्मीके	धर्ममें रत क्षत्रियोंके पास, खेती एवं उपार्जनमें लगे वैश्योंके
वासके उपयुक्त स्थान बनाते हैं। महाभारत, अनुशासनपर्वके	और सेवापरायण शूद्रोंके पास भी मैं सदा रहती हूँ।
११ वें अध्यायमें लिखा है—	लक्ष्मीजी कहाँ नहीं रहतीं, इसके विषयमें उसी
वसामि नित्यं सुभगे प्रगल्भे	पर्वमें लिखा है—
दक्षे नरे कर्मणि वर्तमाने।	नाकर्मशीले पुरुषे वसामि
अक्रोधने देवपरे कृतज्ञे	न नास्तिके सांकरिके कृतघ्ने।
जितेन्द्रिये नित्यमुदीर्णसत्त्वे॥	न भिन्नवृत्ते न नृशंसवर्णे
लक्ष्मीजी रुक्मिणीजीसे कहती हैं—'हे सुभगे! मैं	न चापि चौरे न गुरुष्वसूये॥
निर्भीक, चतुर, कर्ममें निरत, क्रोध न करनेवाले, देवताओंपर	ये चाल्पतेजोबलसत्त्वमानाः
आस्था रखनेवाले, उपकारको न भूलनेवाले, जितेन्द्रिय और बलशाली पुरुषके पास बराबर रहती हूँ।'	क्लिश्यन्ति कुप्यन्ति च यत्र तत्र। न चैव तिष्ठामि तथाविधेषु
जार बेटाशीली पुरुपक पास बराबर रहता हू। स्वधर्मशीलेषु च धर्मवित्सु	न चव ।तष्ठाम तथाविधषु नरेषु संगुप्तमनोरथेषु॥
स्यवमशालपु य वमायत्सु वृद्धोपसेवानिरते च दान्ते।	'मैं अकर्मण्य, नास्तिक, वर्णसंकर, कृतघ्न, अपनी
कृतात्मिनि क्षान्तिपरे समर्थे	मर्यादामें कायम न रहनेवाले, कठोर वचन बोलनेवाले,
क्षान्तासु दान्तासु तथाबलासु॥	चोर और गुरुजनोंसे डाह करनेवाले पुरुषके पास नहीं
सत्यस्वभावार्जवसंयुतासु	रहती। मैं ऐसे पुरुषोंके पास भी नहीं रहती, जिनमें तेज,
वसामि देवद्विजपूजिकासु।	बल, धैर्य और आत्मगौरव अल्प होते हैं। जो लोग
मैं धर्मका आचरण करनेवाले, धर्मके जानकार,	थोड़ेमें ही कष्ट अनुभव करते हैं, जरा-जरा-सी बातपर
वृद्धजनोंकी सेवा करनेवाले, जितेन्द्रिय, आत्मविश्वासी,	क्रोधित हो जाते हैं, उनके पास भी मैं नहीं रहती। साथ
क्षमाशील और समर्थ पुरुषके पास रहती हूँ। वैसे ही	ही जिन पुरुषोंके मनोरथ सर्वदा छिपे रहते हैं, उनके पास
क्षमाशील एवं जितेन्द्रिय स्त्रियोंके निकट रहती हूँ। जो	
स्त्रियाँ सत्य बोलनेवाली और सत्य आचरण करनेवाली,	आगे चलकर लक्ष्मीजीने कहा है—
छल-कपटसे रहित, सरल स्वभाववाली होती हैं एवं	प्रकीर्णभाण्डामनवेक्ष्यकारिणीं
देवताओं तथा गुरुजनोंका पूजन और सत्कार करती हैं,	सदा च भर्तुः प्रतिकूलवादिनीम्।
उनके पास भी मैं रहती हूँ। फिर लक्ष्मीजी कहती हैं—	परस्य वेश्माभिरतामलज्जा-
यस्मिञ्जनो हव्यभुजं जुहोति	मेवंविधां तां परिवर्जयामि॥
गोब्राह्मणं चार्चित देवताश्च।	पापामचोक्षामवलेहिनीं च
काले च पुष्पैर्बलयः क्रियन्ते	व्यपेतधैर्यां कलहप्रियां च।
तस्मिन् गृहे नित्यमुपैमि वासम्॥	निद्राभिभूतां सततं शयाना- मेवंविधां तां परिवर्जयामि॥
स्वाध्यायनित्येषु सदा द्विजेषु क्षत्रे च धर्माभिरते सदैव।	मवावधा ता पारवजयामा। 'उन स्त्रियोंके निकट मैं नहीं रहती, जो अपनी गृहस्थीके
क्षेत्र य वमानिस्त सद्वा वैश्ये च कृष्याभिरते वसामि	सामान—बर्तन, वस्त्र आदि जहाँ-तहाँ फेंक देती हैं और
शूद्रे च शुश्रूषणनित्ययुक्ते॥	सोच-समझकर काम नहीं करतीं और जो बराबर स्वामीके
·	

संख्या ५] भगवान् नारायणका भजन ही सार है विरुद्ध बोला करती हैं। जिस स्त्रीका दूसरोंके घर जानेमें अत: यदि हमें सच्चे अर्थोंमें स्थायीरूपसे धनवान् मन लगता है और जो लजाती नहीं, उसके निकट मैं नहीं बनना है और लक्ष्मी महारानीको प्रसन्न करना है तो हमें रहती। पापिनी, अपवित्र, चटोरी, अधीर, झगडालु, निद्राके उपर्यक्त गुणोंको धारण करने तथा अवगुणोंका त्याग वशीभृत रह सदा ही सोनेवाली स्त्रीको मैं त्याग देती हूँ। करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। भगवान् नारायणका भजन ही सार है महान् संत श्रीविष्णुचित्त पेरि आळवारमें बाल्यकालसे उनसे कुछ अनुभवकी बात पूछी। ब्राह्मणने कहा— ही भगवद्धिक्तके चिह्न दीखने लगे थे। यज्ञोपवीत-संस्कार वर्षार्थमष्टौ प्रयतेत मासान् निशार्थमर्थं दिवसं यतेत। होनेके बाद ही बालकने बिना जाने-पहचाने अपना तन-वार्द्धक्यहेतोर्वयसा नवेन परत्रहेतोरिहजन्मना च॥ मन और प्राण भगवान् श्रीनारायणके चरणोंमें समर्पित कर राजाके पूछनेपर उन्होंने अर्थ किया—'मनुष्यको दिया था। श्रीनारायणके रूपका ध्यान, उनके नामका जप चाहिये कि आठ महीनेतक खुब परिश्रम करे, जिससे वह तथा श्रीविष्णुसहस्रनामका गायन वे किया करते थे। वर्षा-ऋतुमें सुखपूर्वक खा सके; दिनभर इसलिये परिश्रम युवावस्थामें पदार्पण करते ही उन्होंने अपनी समस्त सम्पत्ति करे कि रातको सुखकी नींद सो सके; जवानीमें बुढ़ापेके लिये बेचकर एक उर्वरा भूमि ले ली और उसमें एक सुन्दर संग्रह करे और इस जन्ममें परलोकके लिये कमाई करे।' बगीचा लगाया। प्रतिदिन वे प्रात:काल उठकर 'नारायण' इस उपदेशसे राजा बहुत प्रभावित हुए। ब्राह्मणने नामका जप करते हुए पुष्प-चयन करते और उसकी माला उनके मनमें भक्तिका बीज डाल दिया था। लौटकर उन्होंने समस्त धर्मोंके आचार्योंको एकत्रकर उपर्युक्त बनाकर भगवान् नारायणको पहनाते और मन-ही-मन प्रसन्न होते। एक दिन रात्रिमें उन्हें श्रीनारायणने स्वप्नमें कहा— निश्चय किया था, जिससे उन्हें संतोंका संग एवं उनका 'तुम मदुराके धर्मात्मा राजा बलदेवसे मिलो, वहाँ सब उपदेश सुननेका अवसर मिल जाय। धर्मोंके लोग एकत्र होंगे। वहाँ जाकर तुम मेरे प्रेम और भक्तिका प्रचार करो। तुम वहाँ 'भगवान्के सविशेष रूपकी पण्डित-मण्डलीमें विष्णुचित्त शान्तभावसे भगवान् उपासना ही आनन्द प्राप्त करनेका सच्चा और सरल मार्ग श्रीनारायणका स्मरण करते हुए बैठे। उन्होंने सबकी शंकाओंका बड़े ही सरल शब्दोंमें समाधान कर दिया। है' यह प्रमाणित कर दो।' विष्णुचित्त भगवानुका आदेश पाकर प्रसन्नतासे खिल उनका प्रभाव सबपर पडा। उन्होंने विस्तारसे समझाया— उठे। वे बोले, 'प्रभो! मैं अभी मदुराके लिये प्रस्थान करता हूँ; 'भगवान् श्रीनारायण ही सृष्टिके निर्माता, पालक एवं किंतु मुझे शास्त्रोंका किंचित् भी ज्ञान नहीं। आपके चरणोंको प्रलयकालमें समेट लेनेवाले हैं। वे ही सर्वोपरि देव हैं। अपने हृदेशमें विराजितकर मैं सभामें जा रहा हूँ। आप सर्वतोभावेन अपना जीवन उनके चरणप्रान्तमें अर्पित कर जैसा चाहें, यन्त्रवत् मुझसे करा लें।' विष्णुचित्त मदुरा चले। देना ही कल्याणका एकमात्र मार्ग है। वे ही हमारे रक्षक हैं। महात्मा पुरुषोंकी रक्षा एवं दुष्टोंका दलन करनेके बलदेव नामक राजा मदुरा और तिन्नेवेली जिलोंपर लिये वे ही समय-समयपर पृथ्वीपर अवतरित होकर शासन करते थे। उन्हें प्रजाके सुखका अत्यधिक ध्यान धर्म-संस्थापनका कार्य करते हैं। इस मायामय जगत्से था। इसी कारण वे कभी-कभी अपना वेश बदलकर रात्रिमें त्राण पानेके लिये विश्वासपूर्वक उनपर तन-मन न्योछावरकर घूमा करते थे। एक दिन रात्रिमें घूमते हुए उन्होंने वृक्षके उनकी आराधना करनी चाहिये। उनके नामका जप एवं उनके गुणोंका गान करना चाहिये।' नीचे विश्राम करते हुए एक ब्राह्मणको देखा। राजाने उनसे परिचय पूछा और ब्राह्मणने बताया कि मैं गंगा-स्नान करने भगवान् नारायणका भजन ही जीवनका सार है। गया था और अब सेठू नदीमें स्नान करनेके लिये जा रहा इनके दिव्य उपदेशसे सभी प्रभावित हुए और भगवान् हूँ। रातभर विश्राम करनेके लिये यहाँ ठहर गया हूँ। राजाने नारायणकी भक्तिमें लग गये।

सिद्धावधूत श्रीदयालदास स्वामी 'संजीवनी' आदि मासिक पत्रोंमें भी प्रकाशित हुई थी।



पिता बडे साध्सेवी थे, जिसके कारण इन्हें बाल्यकालमें ही साधुसंगति प्राप्त हुई। फलस्वरूप बारह वर्षकी उम्रमें उन्होंने गृहत्याग कर दिया और पटियाला जिलाके बसेरा गाँवमें जाकर परमहंस बाबा ठाकुरदाससे दीक्षा और संन्यास ग्रहण किया। इसके बाद उन्होंने पन्द्रह वर्षतक

गुप्त रहकर बड़ी तीव्र साधना की। सद्गुरुकी कृपासे

इष्टदेवका अनुग्रह हुआ। जब गुरुदेवकी समाधि हो गयी

कपियाल नामक ग्राममें जन्म ग्रहण किया था। इनके

तब इन्होंने वहाँ एक बहुत बड़ा भण्डारा किया, जिसमें दस हजारके लगभग लोगोंने भोजन किया। अब इनकी सिद्धि मशहूर हो चली थी, इसलिये उस स्थानको छोडकर तीर्थयात्राके लिये निकल पडे। परंतु इनका स्वभाव इतना सरल और प्रेमी था कि रास्तेमें अनेकों पन्थके लोग इनके साथ हो जाते और पारस्परिक वैमनस्य छोड़कर इनकी सेवा करने लगते। ये सभीको प्रेमदुष्टिसे देखते, इनके मनमें अपनी प्रधानताका घमण्ड

कभी आया ही नहीं। ये स्वतन्त्र आसन या गद्दीपर नहीं

बैठते। कुशासन या बालूका आसन ही पसन्द करते।

राजासे लेकर साधारण पुरुषतक इनकी प्रशंसा करते थे।

इनके हजारों साधुओंकी सेवाकी बात उस दिन सन्

्र Hinduism Discord Serves https://dsc.gg/dharma. I MADE WITH LOVE BY Avinash(Sha

कभी नहीं सुना है।' स्वामीजीने पूछा, 'तुमने कितने मठोंका नाम सुना है?' ब्राह्मणने कई मठोंके नाम गिनाये। स्वामीजीने कहा, 'ये मठ सनातनकालसे हैं या किसीने इन्हें बनवाया है?' ब्राह्मणने कहा, 'शंकराचार्यद्वारा इन मठोंका निर्माण हुआ है।' स्वामीजीने कहा कि 'श्रीशंकराचार्य और उनके गुरु श्रीगोविन्दपादस्वामी किस मठके संन्यासी थे?' ब्राह्मण निरुत्तर हो गया। स्वामीजीने कहा. 'पिता-माता और सब परिचयोंका त्याग करके मान-प्रतिष्ठा और कीर्तिका त्याग करके जिसने संन्यास ग्रहण किया है, क्या उसे और परिचय

उनकी तीर्थयात्राके अवसरपर मार्गमें अनेकों व्यक्ति आकर दर्शन करते और उनसे सदुपदेश लाभ करते। जब लोग पूछते कि कोई असुविधा तो नहीं है? तब ये बड़े प्रेमसे समझाते कि ठण्डकके कारण नींद न आनेसे भजनमें बड़ी सुविधा रहती है, सुतरां कोई कष्ट नहीं है। इनके जीवनमें कई अलौकिक घटनाएँ भी घटी हैं।

एक दिन इनके पास एक पाण्डित्याभिमानी ब्राह्मणने

आकर पूछा, 'आप कौन स्वामी हैं?' इन्होंने कहा, 'मैं केवल स्वामी ही नहीं हूँ, दासस्वामी हूँ।' उन्होंने कहा, 'संन्यासी तो कभी दास नहीं होते, स्वामी ही होते हैं।' इसपर महाराजने कहा कि 'भैया! अपने-अपने शिष्योंके सामने सभी स्वामी होते हैं और गुरुओंके सामने

सभी दास होते हैं। अत: संन्यासीमात्र ही स्वामी और दास दोनों होते हैं।' इसपर ब्राह्मणने पूछा, 'आप किस

मठके संन्यासी हैं?' इन्होंने कहा, 'मैं गगनमठका संन्यासी हूँ।' उसने कहा, 'गगनमठका नाम तो मैंने देनेकी आवश्यकता है? जहाँ साम्प्रदायिक परिचय है, वहाँ शरीराभिमान भी अवश्य है। शंकराचार्य और उनकी गुरुपरम्परा किसी मठसे सम्बद्ध नहीं है, अत: मैं कहता हूँ कि मैं गगनमठका संन्यासी हूँ।' स्वामीजीके इस विचारपूर्ण वार्तालापसे उन ब्राह्मणदेवताका भ्रम दूर हो गया और वे इनके शरणागत हए।

स्वामीजी महाराज दैवी सम्पत्तिपर बड़ा जोर देते

संख्या ५] संतोंके लक्षण है। इनके पास विजयकृष्ण गोस्वामी आदि बड़े-बड़े कहा, 'स्वामीजी! इन रुपयोंको अपने आश्रमके साधुओंकी महात्मागण आते और इनके दर्शनसे आनन्दलाभ करते। सेवामें लगा दो।' स्वामीजीने कहा, 'मैं क्या करूँगा कुछ लोग प्रश्न किया करते हैं कि बड़े-बड़े मेलोंमें भैया! यहाँ आज और रुपयोंकी आवश्यकता नहीं है। जो लाखों रुपये साधुओंके खिलाने-पिलानेमें खर्च किये आजके खर्चके लिये रुपये आ चुके हैं, अब तुम्हारा जाते हैं, इनसे देशका क्या कल्याण होता है? मैं लेकर क्या किया जायगा? तुम आज ही किसी दूसरेके अर्थशास्त्र तो नहीं जानता परंतु कल्याण शब्दका एक पास जाकर इन रुपयोंका सदुपयोग कर डालो।' साधारण अर्थ समझता हूँ। जिससे मानव-आत्माका इस तरहकी एक नहीं, अनेक घटनाएँ स्वामीजीके जीवनमें घटी हैं। स्थानका संकोच उन्हें न देनेके लिये बाध्य कल्याण होता है अर्थात् हृदयकी गाँठ खुल जाती है, उसे ही मैं कल्याण कहता हूँ। यह कल्याण धनके कर रहा है। स्वामीजीकी यह पवित्र स्मृति हमारे हृदयमें सद्व्यवहारसे भी हो सकता है और उसे धूलकी तरह चिरकालतक बनी रहे; यही उनके चरणोंमें प्रार्थना है। पानीमें डाल देनेपर भी हो सकता है। काशी-योगाश्रमकी स्थापना करनेवाले प्रसिद्ध वाग्मी एक बारकी बात है, एक धनी सज्जन बहुत-सा संन्यासी श्रीकृष्णानन्दजी (पूर्वनाम श्रीकृष्णप्रसन्न सेन) इन्हीं महात्माके शिष्य थे। रुपया लेकर बाबा दयालदासके पास आये। उन्होंने

संतोंके लक्षण भगवान् श्रीराम भरतजीसे संतोंके लक्षण बतलाते कुल्हाड़ीको) सुगन्धसे सुवासित कर देता है। इसी गुणके

संतन्ह के लच्छन सुनु भ्राता। अगनित श्रुति पुरान बिख्याता॥ संत असंतन्हि कै असि करनी। जिमि कुठार चंदन आचरनी॥

काटइ परसु मलय सुनु भाई। निज गुन देइ सुगंध बसाई॥ ताते सुर सीसन्ह चढ़त जग बल्लभ श्रीखंड।

अनल दाहि पीटत घनहिं परसु बदन यह दंड॥
बिषय अलंपट सील गुनाकर। पर दुख दुख सुख सुख देखे पर॥

हुए कहते हैं—

बिषय अलंपट सील गुनाकर। पर दुख दुख सुख सुख देखे पर॥ सम अभूतरिपु बिमद बिरागी। लोभामरष हरष भय त्यागी॥ कोमलचित दीनन्ह पर दाया। मन बच क्रम मम भगति अमाया॥ सबहि मानप्रद आपु अमानी। भरत प्रान सम मम ते प्रानी॥

बिगत काम मम नाम परायन। सांति बिरित बिनती मुदितायन॥ सीतलता सरलता मयत्री। द्विज पद प्रीति धर्म जनयत्री॥ ए सब लच्छन बसिंह जासु उर। जानेहु तात संत संतत फुर॥ दे भार्री सांतोंके लक्ष्मण (साण) असांस्टा हैं जो बेट

हे भाई! संतोंके लक्षण (गुण) असंख्य हैं, जो वेद और पुराणोंमें प्रसिद्ध हैं। संत और असंतोंकी करनी ऐसी है, जैसे कुल्हाड़ी और चन्दनका आचरण होता है। हे

वेद उनको कोई कामना नहीं होती। वे मेरे नामके परायण होते सी हैं। शान्ति, वैराग्य, विनय और प्रसन्नताके घर होते हैं। हे उनमें शीतलता, सरलता, सबके प्रति मित्रभाव और ब्राह्मणके

कारण चन्दन देवताओं के सिरोंपर चढता है और जगतुका

प्रिय हो रहा है और कुल्हाड़ीके मुखको यह दण्ड मिलता

है कि उसको आगमें जलाकर फिर घनसे पीटते हैं। संत

विषयोंमें लम्पट (लिप्त) नहीं होते, शील और सद्गुणोंकी खान होते हैं। उन्हें पराया दु:ख देखकर दु:ख और सुख

देखकर सुख होता है। वे [सबमें, सर्वत्र, सब समय]

समता रखते हैं, उनके मनमें किसीके प्रति शत्रुता नहीं होती, वे मदसे रहित और वैराग्यवान होते हैं तथा लोभ,

क्रोध, हर्ष और भयका त्याग किये हुए रहते हैं। उनका चित्त बडा कोमल होता है। वे दीनोंपर दया करते हैं तथा

मन, वचन और कर्मसे मेरी निष्कपट (विशुद्ध) भक्ति करते हैं। सबको सम्मान देते हैं, पर स्वयं मानरहित होते

हैं। हे भरत! वे प्राणी (संतजन) मेरे प्राणोंके समान हैं।

ह, जस कुल्हाड़ा आर चन्दनका आचरण होता है। हैं उनम् शातलता, सरलता, सबके प्रात मित्रभाव आर ब्राह्मणके भाई! सुनो, कुल्हाड़ी चन्दनको काटती है [क्योंकि उसका चरणोंमें प्रीति होती है, जो धर्मोंको उत्पन्न करनेवाली है। स्वभाव या काम ही वृक्षोंको काटना है]; किंतु चन्दन हे तात! ये सब लक्षण जिसके हृदयमें बसते हों, उसको [अपने स्वभाववश] अपना गुण देकर उसे (काटनेवाली सदा सच्चा संत जानना।

िभाग ९२ 'गोषु पाप्मा न विद्यते' कहानी— (श्रीसुदर्शनजी सिंह 'चक्र') 'कृष्णा चरने ही नहीं जा रही है! उसे पशुओंके दृढ़ शरीरके और फुर्तीले थे। उन्होंने पिताजीको साथ दूर ले जानेको कहिये!' मैं बात पूरी करूँ, बिजलीकी तेजीसे भुजाओंमें उठा लिया और भूसा इससे पहले दौड़ती-कूदती कृष्णा भड़भड़ाकर मेरी रखनेवाली कोठरीमें डालकर बाहरसे द्वार बन्द कर कोठरीमें घुस आयी। उसने जल्दी-जल्दी मुझे सिर, दिया। गायोंको बड़ी कठिनाईसे वे फिर बाँध पाये। भुजा, पेट, पैरके समीप कई बार सुँघा और फिर कोठरी खोलकर उन्होंने पिताजीसे कहा था—'भैया! शान्त खड़ी हो गयी। इनके सामने मुझे मत मारना! ये पशु तो कुछ समझते नहीं। आज अनर्थ होते-होते बच गया।' कृष्णा आश्रमकी गाय है। बड़े प्रयत्नसे ढूँढ़कर लायी गयी है। उसके खुर, थन, जिह्वादि सब कृष्णवर्ण 'इतनी कृतज्ञता गायमें होती है!' मैं अधिक सोच हैं। पूरे लक्षण हैं उसमें कृष्णा गौके। मैं भोजन करके सकता तब, जब कृष्णा फिर न आ खड़ी होती। वह उठता हूँ तो हाथ धोकर उसे दो रोटी देता हूँ। वह दूर फिर आ गयी है। मुझे सूँघने लगी है। मैं उसके मुखपर भी चरती हो तो मेरे पुकारनेपर हिरनीकी भाँति छलाँग हाथ फेरकर उसे समझानेकी चेष्टामें हूँ - 'मुझे कुछ लगाती आती है। नहीं हुआ। मैं ठीक हूँ। तुम चरने जाओ। तुम्हारा पेट मुझे इधर कलसे ज्वर आने लगा है। साधारण गड्ढा बन गया है। तुम कलसे भूखी हो।' काश, वह मलेरिया है; किंतु चारपाई पकड़नेको तो उसने मुझे मेरी बात समझती होती। विवश कर ही दिया है। परंतु इस गायसे किसने कह 'किंतु गाय कुछ पानेकी भी कहाँ प्रतीक्षा करती दिया कि मैं रोगशय्यापर हूँ ? कल प्रात: चरवाहेने उसे है ? वह तो केवल स्नेह देखती है। 'कृष्णाको फिर चरवाहा ले गया है और मैं फिर सोचने लगा हूँ। रोगी खोला तो सीधे दौड़ती मेरी कोठरीमें घुस आयी। तबसे मनुष्य खाटपर पड़े-पड़े दूसरा क्या करेगा। मैं सोच रहा अबतक उसे जैसे चारा-पानी रुचता नहीं है। चरवाहा बार-बार हाँक ले जाता है। बडी कठिनाईसे मेरे बार-हूँ उन दिनोंकी बात, जब एक बड़े नगरके समीप रहता बार पुचकारनेपर जाती है और पाँच-दस मिनटमें फिर था, नगरसे बाहर एक मन्दिरके घेरेमें। प्रतिदिन नौ बजेके दौड़ती हुंकार करती कोठरीमें आ खड़ी होती है। मुझे लगभग वहाँसे चलकर नगरमें आता कार्यालयमें, और बार-बार सुँघती है और नेत्रोंसे अश्रु गिराती है। इसे सायंकाल लौट जाता। एक मुसलमान घोसी अपनी गायें चरने तो जाना ही चाहिये। प्रात: चराने लाया करता था उधर। एक दिन मैंने समीप चरवाहा कृष्णाको फिर हाँक ले गया है और चरती एक बड़ी बछड़ीको पुचकार लिया। दो क्षण मुझे पड़े-पड़े स्मरण आ रहा है कि बचपनमें घरपर उसपर हाथ फेर दिये। दो गायें और पास आ खड़ी हुईं।

चरवाहा कृष्णाका फिर हाक ल गया है आर चरता एक बड़ा बछड़ांका पुचकार लिया। दो क्षण मुझे पड़े-पड़े स्मरण आ रहा है कि बचपनमें घरपर उसपर हाथ फेर दिये। दो गायें और पास आ खड़ी हुईं। आठ-दस गायें थीं—हष्ट-पुष्ट सुन्दर गायें। छोटे चाचा उनकी गर्दन भी सहलाई। बस, उनसे जान-पहचान हो ही उन्हें चराते और उनकी सेवा करते थे। गायोंमें गयी। वे दूर भी चरती होती थीं और मैं नगर जानेके ही जैसे उनके प्राण बसते थे। एक बार किसी लिये निकलता था तो देखते ही दौड़ी आती थीं। बातपर क्रोधमें आकर पिताजीने छोटे चाचाको एक मुसलमान घोसी युवक कहता था—'ये मेरे पास भी इस थप्पड़ मार दिया। थप्पड़ लगा और तीन-चार गायोंने तरह दौड़कर नहीं आतीं।' इटके देकर अपने रस्से तोड़ डाले। छोटे चाचा बड़े वहाँ बन्दर बहुत थे। प्रायः सब लाल मुँहके ही

संख्या ५] क्षक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक	। न विद्यते '४१ क्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक
———————————————थे। एक दिन एक मोटा लाल मुखका बन्दर मुझे	
डरानेको झपटा; किंतु उसे एक बछड़ीने दौड़ा ही तो	कृष्णा भी कई महीने बँधी नहीं थी। रात्रिमें दूसरे
लिया। दूरतक दौड़कर जब वह पेड़पर चढ़ गया, तब	् पशुओंके साथ गोशालामें बन्द कर दी जाती थी।
भी वह उस पेड़के नीचे खड़ी रही क्रोधमें भरी। उसके	वर्षाके प्रारम्भमें खेतमें पशु बाँधनेकी बात हुई। दूसरे
सामने यह बन्दर मुझे काटने दौड़ता है, यह बात	पशु बँध गये किसी प्रकार; किंतु कृष्णाको जब बहुत
बछड़ीसे सहन नहीं हुई थी। मैं भला क्या देता हूँ इन	दौड़ाया—तंग किया गया तो वह बिफर उठी। अन्तमें
सबको। मेरे पास देनेको वहाँ धरा भी क्या था। भोजन	मुझे पुकारा गया। मैंने जाकर तनिक रूखे स्वरमें
तो मैं नगरमें करके जाया करता था। किंतु गायको	डाँटा—'कृष्णा! तुम यह क्या करने लगी हो? तुम
पदार्थकी उतनी अपेक्षा नहीं है, जितनी स्नेहकी है। यह	माता होकर मारने दौड़ती हो! छि:!' गायने जैसे मेरी
सर्वदेवमयी—देवता और भगवान् केवल भावके भूखे	बात समझ ली। वह मेरे पास आकर चुपचाप खड़ी
होते हैं। गायके सम्बन्धमें भी यही बात कहनेमें मुझे	हो गयी। उस रात वह बाँधी नहीं गयी; किंतु पूरी रात
कोई हिचक नहीं है।	मेरे तख्तेके समीप बैठी रही।
× × ×	गाय हो या बैल—गोजाति मानधनी है। देवता
'आप तनिक दूर ही रहिये! बहुत दुष्ट है यह	सम्मानप्रिय होते हैं ही। कोई-कोई पशु अत्यधिक
बैल!' मुझे चेतावनी दी गयी। जिनकी गायका यह	भावुक होता है। आप उसको छेड़ेंगे, उसके प्रति
बछड़ा है, वे तंग आ चुके थे। नाथमें दो लम्बी रस्सियाँ	असम्मान दिखायेंगे तो उसमें क्रोध आयेगा। इस प्रकार
बँधी थीं। दो व्यक्ति उन रस्सियोंको दोनों ओरसे	वह सबसे सशंक, सबको मारनेवाला बन जायगा। किंतु
पकड़कर तब उसे एक स्थानसे दूसरे खूँटेपर करते थे।	उसमें हिंसाकी वृत्ति नहीं है। वह स्वभावसे निष्पाप है।
बाँसमें लटकाकर दूरसे उसे घास डाली जाती थी। अब	अपराध उसे स्पर्श नहीं करते।
वह बैल गाँव भेज देनेको मेरे पास आया था। ऊँचा,	यह गाय दूध भरपूर देती है; किंतु इससे सावधान
असाधारण बलिष्ठ और क्रोधी बैल।	भी बहुत रहना पड़ता है! एक अच्छे गोसेवकके यहाँ
'गोजाति निर्दोष होती है। लगता है कि इसे	जब मैं गया तो उन्होंने अपनी एक गाय दिखलाते हुए
बहुत तंग किया गया है!' मेरे मनने कहा। बच्चे	बतलाया—'इतना क्रोधी पशु मुझे कभी नहीं मिला है।'
प्रायः छोटे बछड़ोंको छेड़-छेड़कर उन्हें मारना सिखा	'माँ! बात क्या है ? तुम मारोगी मुझे ?' वे गायोंसे
देते हैं। इस बैलके साथ भी यही हुआ था। मैंने	प्रेम करते हैं। उनपर भी कोई गाय मारने झपटती है, यह
थोड़ी हरी घास हाथमें ली और बैलकी ओर वह मुट्ठी	बात मुझे अटपटी लगी। मैं उस गायके पास ही चला
बढ़ा दी। बैलने फुंकार की; किंतु घास वह खाने	गया। मारना ही हो तो वह मुझे पूरी चोट पहुँचाये,
लगा। दूसरी मुट्ठी मैंने कुछ निकट जाकर दी। फुंकार	जिससे उसमें पश्चात्ताप तो जागे। किंतु गायने सिर
ढीली पड़ गयी। उसी शाम मैं उसके पास खड़ा	हिलानेके स्थानपर मेरा हाथ चाटना प्रारम्भ कर दिया।
उसपर हाथ फेरने लगा था और वह मुझे सूँघ रहा	'आपपर यह प्रसन्न है!' वे समीप आने लगे तो
था। एक सप्ताहमें उसकी नाथमें रस्सी बाँधना अनावश्यक	गाय सचमुच उन्हें मारने झपटी। बात प्रकट हो गयी,
हो गया। कोई बच्चा उसे एक स्थानसे दूसरे खूँटेपर	दुहते समय पैर बाँधकर उसे बहुत तंग किया जाता था।
नि:शंक बाँध सकता था।	अपना अपराध जब वे समझ गये, गोमाताको सानुकूल
'कृष्णा!' उस दिन यह अपनी कृष्णा ही बिफर	होनेमें कितने दिन लगने थे। केवल एक समय दूध नहीं

मिला। दूसरे समय गायने स्वयं पैरमें रस्सी लगा लेने दी। क्या धरा है। यह तो पापोंको पुतला है। वेश देखकर द्ध थनमें रहनेसे उसे भी तो कष्ट हो रहा था। भ्रममें पडनेसे कोई लाभ तुम्हें नहीं होगा।' स्वार्थ अन्धा होता है। उस व्यक्तिने वह चरणरज गायके सबसे बडे प्रभावका पता तो मुझे नहीं है; उस स्त्रीको लगायी; किंतु कोई लाभ नहीं हुआ। अब क्योंकि उसके अपार प्रभावका अनुमान कर पाना ही वहाँ बैठे सभी लोगोंने महात्माजीसे ही पूछा—'निष्पाप सम्भव नहीं। वह कामधेनु है-श्रद्धा-सेवित होनेपर पुरुष कहाँ मिलेगा?' प्रत्येक गाय कामधेनु है। किंतु मुझे गायने एक अद्भुत 'निष्पाप मनुष्य या निष्पाप प्राणी?' मैंने पूछ महिमा जाननेका अवसर अवश्य एक बार दिया है। लिया; क्योंकि महात्माजी भी निष्पाप मनुष्यका पता जानते होंगे, ऐसा कोई संकेत उन्होंने नहीं दिया। एक वृद्ध महात्माके दर्शन करने गया था। अब वे 'निष्पाप प्राणी हो तो भी ठीक है; किंतु महात्माजीने कहाँ हैं — उनका शरीर है भी या नहीं, पता नहीं। उनके कहा—'नारायण, मनुष्य ही निष्पाप नहीं होगा तो पशु-पास और भी कुछ लोग बैठे थे। मैं भी प्रणाम करके बैठ गया। इतनेमें एक रोगीको लेकर दो-तीन व्यक्ति पक्षी कहाँसे निष्पाप होंगे, वे तो कर्मयोनिमें हैं ही आये। रोगी स्त्री थी, युवती थी और अत्यन्त पीडामें थी। पापभोगके लिये।'

क्रन्दन किसीका भी हृदय हिला देता। खडा हुआ था—'यह गाय सर्वथा निष्पाप है।' 'सब कर्मका भोग है!' महात्माने शान्त स्वरमें कहा—'अपने पापकर्मका फल अपने ही सिर तो चिह्नकी धूलि मैं उठा लाया और गायकी महिमा उसी समय मुझे देखनेको मिली। उस स्त्रीका चिल्लाना-आयेगा। किंतु इसकी पीड़ा बहुत घट जायगी, यदि किसी निष्पापकी चरणरज इसके शरीरमें लगा दी जाय!' रोना धूलि लगाते ही बन्द हो गया। महात्माजी उठकर

उस व्यक्तिने, जो स्त्रीके साथ आया था, महात्माजीकी

विप्राणां

ही चरणरज उठायी तो वे बोले—'नारायण! इस धूलिमें

उसके पूरे शरीरमें भयंकर ऐंठन थी। हाथ, पैर, सिर सब

अकड़े जाते थे। चीखती थी, छटपटाती थी। उसका

रहे थे।

देवतायतनानि च। यद्गोमयेन शुद्ध्यन्ति किं ब्रूमो ह्यधिकं ततः॥

'अपने पाप वे भोगते हैं। किंतु उनमें एक प्राणीका

पासमें एक बृढी गाय चर रही थी। उसके खुरोंके

शरीर शास्त्र निष्पाप तथा परम पवित्र कहता है!' मैं उठ

उस बूढ़ी गायको भूमिमें पड़कर दण्डवत्-प्रणिपात कर

भाग ९२

– गौ-महिमा

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दिध सर्पिस्तथैव च। गवां पञ्च पवित्राणि पुनन्ति सकलं जगत्॥ गावो मे चाग्रतो नित्यं गाव: पृष्ठत एव च। गावो मे हृदये चैव गवां मध्ये वसाम्यहम्॥

गावः प्रदक्षिणी कार्या वन्दनीया हि नित्यशः। मङ्गलायतनं दिव्याः सृष्टास्त्वेताः स्वयम्भुवा॥

[महर्षि आपस्तम्ब राजा नभगसे कहते हैं — हे राजन्!] गौओंकी परिक्रमा करनी चाहिये। वे सदा सबके लिये वन्दनीय हैं। गौएँ मंगलका स्थान हैं, दिव्य हैं। स्वयं ब्रह्माजीने इन्हें दिव्य गुणोंसे विभूषित बनाया है। जिनके

गोबरसे ब्राह्मणोंके घर और देवताओंके मन्दिर भी शुद्ध होते हैं, उन गौओंसे बढ़कर अन्य किसको बतायें। गौओंके मूत्र, गोबर, दूध, दही और घी—ये पाँचों वस्तुएँ पवित्र हैं और सम्पूर्ण जगत्को पवित्र करती हैं। गायें मेरे आगे रहें,

साधनोपयोगी पत्र संख्या ५] साधनोपयोगी पत्र इसीमें रचे-पचे रहते हैं। सौभाग्यकी बात है कि (१) आपको जगत्के स्वरूपका वास्तविक अनुभव हुआ। परम कल्याण प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। कृपापत्र मिला, अब आप यह निश्चय करें कि दीनबन्धु भगवान्के सिवा कोई भी अपना नहीं है। यह जगत्, यह शरीर धन्यवाद। आपके प्रश्नका उत्तर इस प्रकार है— द्वादशाक्षर मन्त्र बड़े महत्त्वका है। उसके जपसे अनित्य और दु:खरूप है—'अनित्यमसुखं लोकिममं अवश्य कल्याण हो सकता है। प्रतिदिन अधिक-से-प्राप्य भजस्व माम्'—इसे पाकर भगवान्का भजन अधिक जितना हो जाय, उतना प्रेमपूर्वक जपना करो। भजन ही जीवनका सार है। चाहिये। यह बताना कठिन है कि कितने दिनोंमे आप सुख, स्वास्थ्य, धन, मान या अपना उद्धार परम कल्याणकी प्राप्ति हो सकती है। यदि परम जो कुछ भी चाहें, सबकी प्राप्तिका एकमात्र उपाय कल्याणका अर्थ है, भगवान्का प्रत्यक्ष साक्षात्कार, है—भगवान्का भजन। भजन करनेमें कोई कठिनाई तब तो यह साधककी अवस्थापर निर्भर है। अन्यथा नहीं है। अपना तन, मन, धन जो कुछ भी अपना जप करनेवालेका परम कल्याण तो अव्यक्तरूपसे होता कहा जानेवाला हो, सब कुछ मनसे भगवानुको अर्पण कर दें, आप भगवान्के हो जायँ। सोयें भगवान्के ही रहता है। प्रतिक्षण होता है। जिस साधकका भगवान्में जितना अधिक प्रेम होगा, जो प्रभुके दर्शनके लिये, जागें भगवान्के लिये। सब कार्य, सारी चेष्टा भगवान्के लिये हो; भगवान् ही अपने लक्ष्य, अपने लिये जितना ही आकुल-व्याकुल होगा, उतना ही प्राणोंके आराध्य बन जायँ। ऐसी अवस्थामें जो सुख शीघ्र उसे भगवान्का दर्शन मिल सकता है। यह साधकके अधीन नहीं, भगवान्की कृपाके अधीन है। मिलेगा, उसकी कहीं तुलना नहीं है। आप घर न आर्तभावसे पुकारनेपर शीघ्र कृपा होती है। शेष प्रभुकृपा। छोड़ें, काम न छोड़ें, केवल भगवान्से नाता जोड़ लें, उनके ही हो जायँ। सब कार्य भगवान्का चिन्तन करते हुए करें। बस, बेड़ा पार है। शेष प्रभुकृपा। जगत्का स्वरूप प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। पत्र मिला, धन्यवाद। (3) आप दुखी हैं, आपको जगत्में अपमान मिल रहा है, सेवाका रहस्य आपके पास स्वस्थ तन नहीं और बुद्धि नहीं है, इसीलिये प्रिय महोदय! सादर हरिस्मरण। आपका कृपापत्र सुख नहीं है—ऐसी आपकी धारणा है। मिला। उत्तरमें निवेदन है कि हमारी सेवावृत्ति आज यदि वस्तृत: आपकी ऐसी ही परिस्थिति है तो बड़ी ही मिलन और सेवाके नामको कलंकित करनेवाली आपको प्रसन्न होना चाहिये। इसी अवस्थामें मनुष्य हो रही है। तभी इस प्रकारकी घटनाएँ होती हैं। जगत्की ओरसे मोह-ममता हटाकर भगवान्की ओर कामोपभोगपरायणता, अधिकारलिप्सा, लगता और बढ़ता है। भगवान् जिसपर बड़ी दया अर्थकामना, मान-सम्मानकी तृष्णा और स्वार्थपरायणताने करते हैं, उसीके सामने ऐसी परिस्थिति लाकर रखते सेवाको सर्वथा कुत्सित कर दिया है। सेवा आज या तो वह प्रतारणामयी छोटी-सी कीमत है, जिसे हैं। निश्चय ही भगवान् आपपर कृपादृष्टि डाल रहे हैं, आपको अपनी शरणमें लेनेको उत्सुक हैं, अब देकर बदलेमें बहुत बड़ा मान-सम्मान या पद-अधिकार

चाहा जाता है या एक प्रकारकी रिश्वत है, जिसे

देकर नीच स्वार्थ-साधनकी चेष्टा की जाती है। आज

आपका काम है कि इस परिस्थितिसे लाभ उठायें।

संसारके मनुष्य यहाँ दु:ख और अपमान पाकर भी

सेवा की जाती है वोट पानेके लिये, अधिकार पानेके हमारा भिन्न स्वार्थ उनपर अहसान जताने लगेगा, लिये, अपनेको नेतृत्वके आसनपर बैठाये जानेके लिये उनकी कृतज्ञता चाहेगा और चाहेगा उनके द्वारा अपनी अथवा यों कहिये कि बहुत बड़ी सेवा करानेके सेवा! और ऐसा नहीं होगा तो आजके हम वही लिये! इसीसे सेवा वस्तुत: सेवा न होकर एक सेवक, कल असुर बनकर उनका अनिष्ट करने लगेंगे। प्रकारकी धोखेबाजी या प्रवंचना हो गयी है। सेवा होनी चाहिये—सर्वथा अव्यभिचारिणी, स्वार्थशून्य, अनन्य और पवित्र। सेवाका फल बस, सेवा ही हो सेवामें सेवकभाव नहीं रहा वरं बहुतसे सेवक (अनुयायी या गुलाम) तैयार करनेकी दम्भपूर्ण और सेवाका आनन्द भी सेवासे ही मिले और कुछ लालसा आ गयी है। निर्मल सेवा तो प्राय: होती चाहिये ही नहीं। भगवान् श्रीकपिलदेवजीने ही नहीं। वस्तुत: सेवा ही भक्ति है और उसका श्रीमद्भागवतमें कहा है— स्वरूप है—'सारी इन्द्रियोंके द्वारा इन्द्रियोंके स्वामी सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत ह्रषीकेशका सेवन करना। उसमें कोई भी उपाधि दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः॥ नहीं होनी चाहिये और होनी चाहिये केवल परमसेव्य (श्रीमद्भा०३। २९। १३) श्रीभगवानुकी परायणता। तभी वह निर्मल सेवा होती 'मेरे सेवकोंको सेवामें इतना आनन्द प्राप्त होता है कि वे मेरी सेवाको छोडकर सालोक्य, सार्ष्टि, सर्वोपाधिविनिर्मुक्तस्तत्परत्वेन निर्मलः। सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य-ये पाँच प्रकारकी मुक्ति देनेपर भी नहीं लेते हैं।' (मेरी सेवा ही करते ह्रषीकेण ह्रषीकेशसेवनं भक्तिरुच्यते॥ ऐसी सेवा तभी हो सकती है, जब सेव्यके रहते हैं)। साथ सेवकका तादात्म्य हो जाय। जबतक सेवकका इस सेवामें न तो सेवक सेव्यका गुलाम है और न सेवा किये बिना उससे रहा ही जाता है। सेव्यके

तथा सेव्यका स्वार्थ पृथक्-पृथक् है, तबतक अपनी सेवा होती है, सेव्यकी नहीं। देशसेवक वही है, जिसकी देशके साथ एकात्मता हो गयी हो। देशका हित ही जिसका हित, देशकी उन्नति ही जिसकी उन्नति, देशका जीवन ही जिसका जीवन और देशकी मृत्यु ही जिसका मरण हो; देशके और उसके स्वार्थमें न कोई विरोध हो और न व्यवधान हो। जो ऐसा हो, वही देशसेवक या देशभक्त है। सेवकका स्वार्थ है एकमात्र अपने सेव्यका सुख, सेव्यका हित। अपना पृथक् सुख या अपना हित अन्य कुछ है ही नहीं। हम शरणार्थियोंकी सेवा करना चाहते हैं, हम दुर्भिक्षपीड़ित अन्न-वस्त्रहीन नर-नारियोंकी सेवा करना

चाहते हैं; परंतु जबतक हमारी अन्तरात्माका उनकी

करता है। सेवाका न विज्ञापन करता है, न बदला चाहता है। वह सहज सेवा करता है। इसी प्रकार सेव्य भी यदि सेवा ग्रहण करनेमें ही अपना गौरव समझता है और सदैव सेवा ग्रहण करनेके लिये सज-धजकर बैठा रहता है तो वहाँ भी यथार्थ सेवा नहीं होती है। सेव्यके हृदयमें भी असलमें सेवकका सेवक बननेकी आकांक्षा होनी

चाहिये। उसकी भी सेवकके साथ ऐसी एकात्मता

होनी चाहिये कि वह सेवकके सुखमें ही सुखका

अनुभव करे। सेवा वस्तुत: बड़े ही महत्त्वकी वस्तु

साथ उसकी इतनी एकात्मता है कि स्वभावसे ही

वह उसको सुख पहुँचाकर स्वयं परम सुखका अनुभव

भाग ९२

अन्तरात्माके साथ पूर्ण संयोग नहीं हो जाता तबतक है। इसीसे सच्ची सेवाका फल बड़ा ही मधुर और कुछ दिनोंतक हम किसी आवेशमें उनके लिये कुछ अनिर्वचनीय होता है और उसे देते भी हैं अनिर्वचनीय कार्य कर सकते हैं, परंतु कुछ ही दिनोंके बाद मधुरातिमधुर श्रीभगवान् ही। शेष प्रभुकृपा। व्रतोत्सव-पर्व

मुल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि

मकरराशि दिनमें १।५९ बजेसे, संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीवृत, चंद्रोदय

कुम्भराशि रात्रिमें १।३८ बजेसे, पंचकारम्भ रात्रिमें १।३८ बजे।

भद्रा दिनमें ८। १९ बजेतक, मेषराशि रात्रिमें ७। ३५ बजेसे, पंचक

मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि

भद्रा रात्रिशेष ५।९ बजेसे, कर्कराशि प्रातः ६।५१ बजेसे।

तुलाराशि सायं ५।१४ बजेसे, आर्द्राका सूर्य सायं ६।४६ बजे।

भद्रा प्रातः ५।३१ बजेतक, निर्जला(भीमसेनी) एकादशीव्रत (सबका)।

भद्रा दिनमें ७। ४० बजेसे रात्रिमें ८। २८ बजेतक, धनुराशि दिनमें

पुरुषोत्तमी एकादशीव्रत (सबका), मुल रात्रिमें ७। ३४ बजेतक।

भद्रा दिनमें १०।५२ बजेसे रात्रिमें ११।३८ बजेतक।

भद्रा प्रातः ५।२४ बजेसे सायं ६।७ बजेतक।

भद्रा रात्रि ८। २० बजेसे, मूल रात्रिमें ७। ९ बजेसे।

वृषराशि रात्रिमें १२।५३ बजेसे, सोमप्रदोषव्रत।

भद्रा प्रातः ५। २३ बजेसे सायं ४। ३१ बजेतक।

मिथुनराशि रात्रिशेष ४।२३ बजेसे, अमावस्या।

मूल रात्रिशेष ४। ४६ बजेतक।

मीनराशि दिनमें ११।४८ बजेसे।

समाप्त रात्रिमें ७। ३५ बजे।

रात्रिमें ९।४९ बजे।

व्रतोत्सव-पर्व

,,

२ ,,

३ ,,

4 ,,

ξ ,,

9 ,,

6 ,,

9 ,,

१२ "

१३ "

१४ जून

१५ "

१६ "

सं० २०७५, शक १९४०, सन् २०१८, सूर्य उत्तरायण, ग्रीष्म-ऋतु, अधिक ज्येष्ठ कृष्णपक्ष

नक्षत्र दिनांक

वार

तिथि

ज्येष्ठा रात्रिमें २। २७ बजेतक ३० मई धनुराशि रात्रिमें २।२८ बजेसे।

प्रतिपदारात्रिमें ८।६ बजेतक बुध द्वितीया 🦙 १०।७ बजेतक मूल रात्रिशेष ४। ४६ बजेतक ३१ गुरु तृतीया " ११ । ३८ बजेतक

संख्या ५]

पू०षा० अहोरात्र शुक्र पू०षा० दिनमें ७। २० बजेतक शनि

१ जून चतुर्थी 🕖 १।४० बजेतक

उ०षा० " ९।५७ बजेतक

पंचमी 🥠 ३।३८ बजेतक रिव षष्टी अहोरात्र सोम श्रवण " १२। ३० बजेतक 8 "

मंगल धनिष्ठा " २। ४७ बजेतक

षष्ठी प्रात: ५। २४ बजेतक सप्तमी "६।५१ बजेतक ब्ध शतभिषा '' ४। ४१ बजेतक

पू०भा० सायं ६ । १० बजेतक गुरु

उ०भा० रात्रिमें ७।९ बजेतक शक्र

अष्टमी दिनमें ७।४९ बजेतक रेवती 🤫 ७। ३५ बजेतक शनि

नवमी 🕖 ८। २० बजेतक

दशमी 🗤 ८। १९ बजेतक अश्वनी " ७। ३४ बजेतक रवि १० 11

एकादशी 🗤 ७।४९ बजेतक द्वादशी प्रात: ६।५० बजेतक भरणी '' ७। ४ बजेतक सोम ११ "

त्रयोदशी ,, ५ । २३ बजेतक मंगल कृत्तिका सायं ६।१६ बजेतक

अमावस्या रात्रिमें १।३३ बजेतक रोहिणी " ५। १६ बजेतक बुध

सं० २०७५, शक १९४०, सन् २०१८, सूर्य उत्तरायण, ग्रीष्म-ऋतु, शुद्ध ज्येष्ठ शुक्लपक्ष तिथि वार नक्षत्र दिनांक

प्रतिपदा रात्रिमें ११।१७ बजेतक मृगशिरा दिनमें ३। ४१ बजेतक गुरु

आर्द्रा 🗤 २।७ बजेतक द्वितीया" ८।५२ बजेतक शुक्र

पुनर्वसु "१२।२६ बजेतक शनि तृतीया सायं ६। २३ बजेतक

चतुर्थी दिनमें ३।५५ बजेतक पुष्य ग १०।४८ बजेतक रवि

सोम

पंचमी 😗 १। ३४ बजेतक मंगल

षष्ठी 😗 ११। २३ बजेतक सप्तमी 😗 ९। २६ बजेतक बुध

गुरु

शुक्र

अष्टमी दिनमें ७ ।५० बजेतक नवमी प्रात: ६। ३७ बजेतक दशमी 🔈 ५ । ४९ बजेतक शनि स्वाती अहोरात्र

रवि

सोम

मंगल

बुध

एकादशी 🚧 ५ । ३१ बजेतक

द्वादशी 🕶 ५ । ४४ बजेतक

त्रयोदशी "६ । २९ बजेतक

चतुर्दशी दिनमें ७।४० बजेतक

पूर्णिमा" ९ । १५ बजेतक । गुरु

पु०फा० प्रात: ६। ३६ बजेतक उ०फा० प्रातः ५। ४६ बजेतक

हस्त ग५। १६ बजेतक

आश्लेषा 🗤 ९ । १२ बजेतक मघा 11 ७। ४७ बजेतक

स्वाती प्रात: ५।३७ बजेतक

विशाखा 11 ६। ३३ बजेतक

अनुराधा दिनमें ७।५९ बजेतक

ज्येष्ठा 🗤 ९। ५२ बजेतक

मूल 🗤 १२। ७ बजेतक

26 "

१७ "

29 "

२० "

28 "

२२ "

73 "

28 "

२५ "

२६ "

२७ "

भद्रा दिनमें ३। ५५ बजेतक, श्रीवैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, मूल

दिनमें १०।४८ बजेसे।

सिंहराशि दिनमें ९।१२ बजेसे।

मिथुनसंक्रान्ति सायं ६।१३ बजे।

मूल दिनमें ७।४७ बजेतक। भद्रा दिनमें ९।२६ बजेसे रात्रिमें ८।३८ बजेतक, कन्याराशि दिनमें १२।२३ बजेसे। सायन कर्कका सूर्य १०। १९ बजे।

भद्रा सायं ५।४० बजेसे।

मुल दिनमें ७।५९ बजेसे।

९।५२ बजेसे, व्रत-पूर्णिमा।

२८ ^{११} पूर्णिमा, मूल दिनमें १२।७ बजेतक।

सोमप्रदोषव्रत।

कृपानुभूति

हनुमान्जीकी कृपा

घटना जुलाई, १९७७ ई० की है, जब मैं एवं मेरे

अभिन्न मित्र डॉ॰ लक्ष्मीलालजी शर्मा डेनमार्ककी यात्राकी तैयारीमें लगे हुए थे। हम दोनों उदयपुर, राजस्थानके

रहनेवाले हैं एवं एक शोधपरियोजनामें दोनों शोधछात्रके रूपमें कार्यरत थे। उस समय पासपोर्ट मुश्किलसे बनता था तथा दिल्लीमें ही जाकर बनवाना पडता था। ५-६

दिनके अथक प्रयास, परिश्रम एवं भाग-दौडके पश्चात् हमारे पासपोर्ट १३ जुलाई, १९७७ को बन गये थे। हमारी उड़ान १८ जुलाईको फ्रेंकफर्ट, जर्मनीके लिये थी तथा

वहाँसे सड़कमार्गद्वारा हमें डेनमार्कके लिवोद्वीप जाना था, जहाँ पर्यावरणविज्ञानकी एक कार्यशालामें हमें करीब एक महीनेके लिये भाग लेना था।

पासपोर्ट बननेके बाद हमारे पास चार दिनका समय था, हमने सोचा कि इतने कम समयमें उदयपुर जाकर वापस आनेसे कोई लाभ नहीं है, क्यों न हरिद्वार-

ऋषिकेशकी यात्राकर गंगास्नानका पृण्य एवं आनन्द लिया जाय। गंगाजीमें एक अद्भुत आध्यात्मिक आकर्षण है, उसके प्रभावमें व्यक्ति खिंचा चला जाता है। हमने

स्टेट परिवहन बससे हरिद्वारके लिये १४ जुलाईको प्रात: ६ बजेसे यात्रा प्रारम्भ की। रात ८ बजेके आसपास रुड़की बसस्टैण्डपर बस पहुँची एवं चाय-पानीके लिये ड्राइवर, कण्डक्टर तथा सवारियाँ उतरीं। वहाँ एक ही रंगकी दो-

दिल्लीके अन्तरराज्यीय बस अङ्डेसे तत्कालीन यू०पी०

तीन बसें खडी थीं। चाय-नाश्ताके बाद हमें बसोंके पास जाकर पता लगा कि हमारी बस तो जा चुकी है, हमारे तो होश उड गये, जमीन खिसक गयी; क्योंकि हमारे सारे

डालर, वस्त्र आदि सभी सामग्री हमारी अटैचियोंमें थी, जो बसमें जा चुकी थी। हम तो पूरी तरह लुट चुके थे। उसी समय हमने टैक्सीके लिये भी प्रयास किये, पर अत्यधिक कोहरेके कारण टैक्सीवालेने भी मना कर दिया। मैंने उस

कागजात, पासपोर्ट, हवाई टिकट, संगोष्ठीके पत्र, कुछ

समय श्रीहनुमानुजी महाराजको याद किया तथा हनुमान-चालीसाका पाठ प्रारम्भ कर दिया एवं निवेदन किया कि हे पवनपुत्र! हम तो गंगास्नानके लिये जा रहे थे और यह

मेरे पिताजी परमभागवत योगी महापुरुष थे, सूर्यास्त होते ही पद्मासन लगाकर नित्य सन्ध्यावन्दन करते एवं प्रात: श्रीमद्भागवतका पाठ करते थे। वन विभागकी

राजकीय सेवामें होनेपर भी उनका यह नित्य-कर्म कभी खंडित नहीं हुआ था। पिताश्री मुझे समझाते थे कि ईश्वरमें श्रद्धा एवं विश्वास रखो और कुछ अधिक न कर सको तो गायत्री मन्त्रकी एक माला एवं हनुमानचालीसाका नित्य पाठ

करो। मैं हनुमानचालीसाका पाठ रोज करने लगा, कम समयमें औपचारिकताके रूपमें पिताकी आज्ञाका पालन करता था, पर ईश्वरपर विश्वास दृढ़ नहीं था। आधुनिक

शिक्षाका तथाकथित वैज्ञानिक प्रभाव था। हमने उस संकटकी घड़ीमें बजरंगबलीको याद किया एवं कातर स्वरमें प्रार्थना की— जै जै जै हन्मान

गोसाईं। कृपा करहु गुरुदेव की नाईं॥ हम दोनों और आसपास एकत्रित लोगोंको तब आश्चर्य हुआ, जब करीब आधा-पौनघण्टे के बाद वह बस वापस वहाँ आयी। डाइवर कहने लगा कि यात्रियोंने कहा

तो था कि दो सवारियाँ रह गयी हैं, पर मैंने ध्यान नहीं दिया परंतु आगे जाकर अज्ञात प्रेरणा हुई कि नहीं, बस वापस ले जाना चाहिये और मैं बस वापस लेकर आ गया। इस हनुमत्कृपानुभूतिसे हमारा जीवन ही बदल गया,

विश्वास दृढ़ हो गया। इस घटनाके बाद भी कितने ही प्रसंग एवं घटनाएँ हुई हैं, जब हनुमान्जीने मेरे ऊपर कृपा बरसायी है, जिसे मात्र संयोग नहीं कहा जा सकता। प्रत्यक्ष अनुभव करके भी नकारना कृतघ्नता ही होगी। मेरा सभी

ईश्वरपर, विशेषकर श्रीहनुमान्जीपर हमारी श्रद्धा एवं

पाठकोंसे यही निवेदन है कि अच्छे एवं बुरे समय या

संकटके समय हुनुमानुजीकी प्रार्थना करो, कुपाका आभास

करो, आनन्द लो एवं आभार प्रकट करो। श्रीरामचरितमानसके किष्किन्धाकाण्डमें जाम्बवन्तजीने हनुमान्जीको सत्य ही कहा है-

पवन तनय बल पवन समाना। बुधि बिबेक बिग्यान निधाना॥ कवन सो काज कठिन जग माहीं। जो निहं होइ तात तुम्ह पाहीं॥

(रा०च०मा० ४। ३०। ४-५) समाने त्यांडाना Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY व्यथानकारी अर्मे

पढो, समझो और करो संख्या ५] पढ़ो, समझो और करो (१) (२) 'घरमें ही झगडा निबटा लें' धर्मकी बहन 'मुकदमा लड्नेसे क्या फायदा, आपलोग आखिर आजसे ६१ वर्ष पूर्वकी घटना है, उस समय भाई-भाई ही तो हैं। कचहरीमें परेशानीके सिवा और मेरी उम्र मात्र छः माहकी थी। मुझसे पूर्व तीन क्या मिल सकता है? कोर्ट-कचहरीको भूल जाइये, बालकोंके चेचकसे दिवंगत हो जानेके बाद मेरा जन्म आपसमें मेलसे रहें, घरमें ही झगड़ा निबटा लें।' ये हुआ था। अत: मैं अपने माता-पिताका अत्यन्त लाडला शब्द एक प्रसिद्ध वकीलने ऐसे व्यक्तिसे कहा था, था। एक बारकी बात है, अचानक मेरे कानमें दर्द होना प्रारम्भ हुआ, जो किसी दवासे शान्त ही नहीं जो उन्हें अपना मुकदमा लडनेके लिए वकील नियुक्त हो रहा था। किसीने बताया कि मेरे गाँवसे १५ करने आया था। वह व्यक्ति इस वकीलके पास इस आशासे आया था कि हमारी ओरसे वे वकालत किमी० दूर एक गाँवमें एक ढोलण (ढोल बजानेवाली करेंगे तो हम अवश्य ही मुकदमा जीत जायँगे, पर महिला) इसका इलाज करती है। मेरे पिताजी मुझे उसे बड़ी निराशा हुई। वह लौटा और राहमें अपने लेकर उसके पास गये और कहा—ढोलणजी! मेहनताना साथियोंसे कहने लगा—'यह वकील तो बडा खराब जो चाहे ले लो, परंतु मेरे बच्चेको तुरंत ठीक कर निकला, धर्मका उपदेश देने लगा।' कुछ साथियोंने दो। चार दिनसे त्राहि-त्राहि कर रहा है, न इसने नींद ली और न हमने। मेरे एक यही लड़का बचा उसकी इस बातका समर्थन किया, पर एकने कहा— 'नहीं भाई! इस वकीलकी बात ठीक है, यह सत्य है, तीनको चेचक निगल गयी। कह रहा है। अन्य कोई वकील ऐसी बातें नहीं महिला घरमें गयी और एक कपडेकी पोटलीमें बँधी हुई दवा लेकर आयी। पानीमें भिगोकर दो बूँद करेगा, सदा रुपये ऐंठनेके फेरमें ही रहेगा। वकील जब समझौताका उपदेश देगा तो उसकी वकालत कानमें टपकायी। तीन मिनटके बाद कानपर हाथ रखकर कैसे चलेगी? उसे फीस कौन देगा? रुपयेके लिये सिरको टेढा किया। दवाके साथ-साथ कुलबुलाते कीड़ोंका ढेर हथेलीपर दिखायी दिया। मेरा रोना बन्द ही तो सारे वकील कोर्टमें आते हैं। यह वकील आगे चलकर महान् व्यक्ति बनेगा।' दूसरा बोला-हुआ। माँकी गोदमें ही सो गया। पिताजीने राहतकी साँस 'हाँ भाई! इस वकीलमें कुछ आध्यात्मिक ज्ञान है, ली। उसको मेहनतानेके रुपये देने लगे। महिलाने रुपया तभी तो रुपये ऐंठनेके ढंगको बुरा समझता है तथा लेनेसे इनकार करते हुए कहा—मेरे कोई भाई नहीं है, न्यायका मार्ग बतलाता है। चलो, कचहरी न जाकर अतः मैं इसे धर्मका भाई मानती हूँ। भाईसे कोई हमलोग आपसमें मेल करनेकी कोशिश करेंगे।' उपर्युक्त मेहनताना लेता है? बातें सन् १९१६ ई० की हैं। उस समय बिहार पिताजी पसोपेशमें पड़ गये। एक शूद्र महिलासे ब्राह्मणका रिश्ता कैसे निभेगा? परंतु अचानक उनके राज्य बंगालसे अलग हो चुका था। पटनामें हाईकोर्ट बन गया था। इस वकीलकी वकालत खुब चमकी हृदयमें स्नेह उमडा। वे तुरंत बाजार गये। एक चुनरी लाकर उस महिलाको ओढ़ाते हुए बोले—जब तुम इसे हुई थी। उस समय इनकी उम्र ३०-३२ वर्षकी थी। यही वकील समय आनेपर भारतके प्रथम राष्ट्रपति अपना धर्मभाई मानती हो तो तुम मेरी धर्मकी बेटी हुई। बने। उनका नाम था डॉ० राजेन्द्र प्रसाद। लो, मेरा नाम-पता। समय मिले तब अपने पीहर आना। आजसे तुम्हारा नाम दरिया रहेगा। - उमेश प्रसाद सिंह

भाग ९२ यह एक संयोग था या पूर्वजन्मके संस्कार, यह जब उसकी मनपसन्दका कोई वेश इत्यादि लेनेको तो ईश्वर ही जाने। रिश्ता प्रगाढसे प्रगाढतर होता कहते तो वह कहती भैया अभी छोटा है, आप गया। मेरी सगी बहनोंकी शादी हो चुकी थी। हमारी अकेले कमानेवाले हैं और खेतीमें आय भी क्या माँ घरके काम-काजके लिये अकेली रह गयी। घरमें होती है? रहने दीजिये, अगली बार आऊँगी तब ले खेती-बाड़ी एवं गाय-भैंसोंकी देख-रेखका सारा कार्य लूँगी। फिर भी जो कुछ दिया जाता उसे अपने माँको ही करना पड़ता। फिर बरसातके मौसममें निराई-गाँवमें मोहल्लेभरके लोगोंको इकट्ठा करके बताती गुड़ाई-कटाई आदिका कार्य और बढ़ जाता। दरिया और खुशीसे झूमते हुए कहती—देखो, मेरे भैयाके मेरी मॉॅंके कार्यमें हाथ बॅंटाने आती। दो-दो महीने यहाँसे मुझे मिली है। रहकर कृषिका समस्त कार्य करवाती। पशुओंके लिये हमारे घरमें किसी भी अवसरपर पहला निमन्त्रण चारेके भारे उठाकर लाती, दिनभर कड़ी मेहनत करती। भगवानुको और दूसरा दरियाको दिया जाता है। यदि अपनी जातीय मर्यादाका पूरा-पूरा ध्यान रखती। समय निमन्त्रणमें कभी देरी हो जाय तो सौ-सौ उलाहने मिलनेपर गाँवमें किसीके कानमें पीड़ा होनेपर उनका सुनने पड़ते हैं। हमारी सगी बहनोंको तो दरियाकी इलाज भी करती। यह उसकी आयका जरिया था, झिड़िकयाँ भी सुननी पड़ती हैं। वह कहती—तुम परंतु हमारे नजदीकी रिश्तेदारोंसे मेहनताना नहीं लेती। दोनों इस घरमें जन्म लेकर आयी हो तो मैं भगवान्की हम सगे दो भाई तथा दो बहनें हैं। उस समय भेजी हुई। मैं किसी तरह तुमसे कम नहीं हूँ। मेरे हमारी शादियोंपर दरियाने यथोचित बल्कि यों कहिये पिताजीने मुझे जो प्यार दिया है, कोई लौकिक पिता कि अपनी हैसियतसे अधिक खर्च किया। कई बार नहीं दे सकता। जब हमारे माता-पिताका देहावसान मना करनेपर भी वह इतना खर्च कर देती कि हमें हुआ, तब दरियाने ऐसा करुण रुदन किया कि पत्थर शर्मिन्दा होना पड़ता। फिर वह अपना अधिकार जताती भी पिघल जाय। गाँवके बहुत-से लोग उसका विलाप हुई कहती-मुझे मना क्यों करते हो, क्या मैं आपके सुनकर अश्रु बहाये बिना न रह सके। घरकी सदस्य नहीं हूँ? दुर्भाग्यसे दरियाकी अपनी अब हमारे बेटे-पोते और बहुएँ भी दरिया बुआसे कोई संतान नहीं है। उसने जिसे गोद लिया है, वह उतना ही प्रेम करते हैं। घरके किसी खुशीके मौकेपर अश्वोंका प्रशिक्षक है। उसके प्रशिक्षित घोड़े एक और कोई आये न आये, दरिया बुआ तो आनी ही शादीमें ग्यारहसे इक्कीस हजारतक कमाते हैं। मेरी चाहिये। आज वह लगभग ८० वर्षकी है। आँखसे शादीमें दरियाने दो घोड़े तीन दिन पहले लाकर खड़े अन्धी, कानसे बहरी, पैरोंसे लाचार। बच्चोंने मेरी कर दिये और कहा—'मेरा भैया जिसपर चाहे उसपर सेवानिवृत्तिका निमन्त्रण दरिया बुआको भेज दिया। बैठे', फिर दोनों घोड़े बारातमें साथ चले। लोग इस दरियाके गोदलिये पुत्रने उसे खूब समझाया कि अब रिश्तेकी बलैया लेते और प्रशंसा करते नहीं थकते। तुम्हारा शरीर इधर-उधर जाने-आने लायक नहीं है, वहाँ तुम्हारी सँभाल कौन करेगा? तुम्हारा वहाँ जाना उसके प्रेम एवं त्यागके सामने हमारा उसको कुछ भी देना न्यूनतम ही लगता है। ठीक नहीं। दरियाने एक न सुनी, खाना-पीना छोड मेरी सगी बहनें लेन-देनके मामलेमें रूठती हैं, दरवाजेपर बैठ गयी और बोली—मुझे पहुँचाने चलो खीझती हैं, गिला-शिकवा करती हैं, परंतु दरियाकी तो अन्न-जल लूँगी, नहीं तो प्राण छोड़ दूँगी। विवश दरियादिली इतनी कि वह आजतक कभी नहीं रूठी। हो बेटेकी बहूको साथ आना पड़ा। बेटेकी बहू लेनेपर तो कभी उसकी दृष्टि ही नहीं रही। पिताजी कभी हमारे यहाँ आयी नहीं थी। दरियाकी काँपती

प्रविष्ट हुआ।

मनन करने योग्य

किसीकी हँसी उड़ाना उसे शत्रु बनाना है वेगपूर्वक चलने लगा। आगे ही जलपूर्ण सरोवर था। धर्मराज युधिष्ठिरका राजसूय यज्ञ समाप्त हो गया

गये थे। यज्ञमें पधारे नरेश तथा अन्य अतिथि-अभ्यागत विदा हो चुके थे। केवल दुर्योधनादि बन्धुवर्गके लोग तथा श्रीकृष्णचन्द्र इन्द्रप्रस्थमें रह गये थे। राजसूय यज्ञके समय दुर्योधनने पाण्डवोंका जो विपुल वैभव देखा था, उससे उसके चित्तमें ईर्घ्याकी अग्नि जल उठी थी। उसे यज्ञमें आये नरेशोंके उपहार स्वीकार करनेका कार्य मिला था। देश-देशके नरेश जो अकल्पित मूल्यकी अत्यन्त दुर्लभ वस्तुएँ धर्मराजको देनेके लिये ले आये, दुर्योधनको ही उन्हें लेकर कोषागारमें रखना पड़ा। उनको देख-देखकर दुर्योधनकी ईर्ष्या बढ़ती ही गयी। यज्ञ समाप्त हो जानेपर जब सब अतिथि चले गये, तब एक दिन

था। वे भूमण्डलके चक्रवर्ती सम्राट् स्वीकार कर लिये

उस समय मय दानवद्वारा निर्मित राजसभामें धर्मराज युधिष्ठिर अपने भाइयों तथा द्रौपदीके साथ बैठे थे। श्रीकृष्णचन्द्र भी उनके समीप ही विराजमान थे। दुर्योधनने मुख्य द्वारसे सभामें प्रवेश किया। मय दानवने उस सभाभवनको अद्भृत ढंगसे बनाया था। उसमें अनेक

वह हाथमें नंगी तलवार लिये अपने भाइयोंके साथ पाण्डवोंकी राजसभामें कुछ कठोर बातें कहता

स्थानोंपर लोगोंको भ्रम हो जाता था। सूखे स्थल जलपूर्ण सरोवर जान पड़ते थे और जलपूर्ण सरोवर सूखे स्थल-जैसे लगते थे।

दुर्योधनको भी उस दिन यह भ्रम हो गया। वैसे वह अनेक बार उस सभामें आ चुका था; किंतु आवेशमें

होनेके कारण वह स्थलोंको पहचान नहीं सका। सूखे स्थलको जलसे भरा समझकर उसने अपने वस्त्र उठा लिये। जब पता लगा कि वह स्थल सुखा है, तब उसे

संकोच हुआ। लोग उसकी ओर देख रहे हैं, यह देखकर उसका क्रोध और बढ़ गया। उसने वस्त्र छोड़ दिये और भयंकर परिणाम था। [श्रीमद्भागवत] Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sha

समान ही वहाँ भी आगे बढ़ा। फल यह हुआ कि वह जलमें गिर पडा। उसके वस्त्र भीग गये।

उसे भी उसने सूखा स्थल समझ लिया और स्थलके

दुर्योधनको गिरते देखकर भीमसेन उच्चस्वरसे हँस पड़े। द्रौपदीने हँसते हुए व्यंग्य किया—'अन्धेका पुत्र

अन्धा ही तो होगा।'

युधिष्ठिरने सबको रोका; किंतु बात कही जा चुकी थी और उसे दुर्योधनने सुन लिया था। वह क्रोधसे उन्मत्त हो उठा। जलसे निकलकर भाइयोंके साथ शीघ्रगतिसे वह राजसभासे बाहर चला गया और बिना किसीसे मिले

रथमें बैठकर हस्तिनापुर पहुँच गया। इस घटनासे दुर्योधनके मनमें पाण्डवोंके प्रति इतनी घोर शत्रुता जग गयी कि उसने अपने मित्रोंसे पाण्डवोंको पराजित करनेका उपाय पूछना प्रारम्भ किया। शकुनिकी

सलाहसे जुएमें छलपूर्वक पाण्डवोंको जीतनेका निश्चय हो गया। आगे जो हुआ और जुएमें द्रौपदीका जो घोर अपमान दुर्योधनने किया, जिस अपमानके फलस्वरूप अन्तमें महाभारतका विनाशकारी संग्राम हुआ, वह सब

अनर्थ इसी दिनके भीमसेन एवं द्रौपदीके हँस देनेका

नवीन प्रकाशन—छपकर तैयार

संक्षिप्त नारदपुराण (कोड 2131) ग्रन्थाकार (गुजराती)— इसमें सदाचार-मिहमा, वर्णाश्रम धर्म, भिक्त तथा भक्तके लक्षण, विविध प्रकारके मन्त्र, देवपूजन, तीर्थ-माहात्म्य, दान-धर्मके माहात्म्य और भगवान् विष्णुकी मिहमाके साथ अनेक भिक्तपरक उपाख्यानोंका विस्तृत वर्णन किया गया है। सिचत्र, सिजल्द। मूल्य ₹२२० (कोड 1183) हिन्दीमें भी उपलब्ध।

श्रीप्रेम-सुधासागर (कोड 2123) ग्रन्थाकार (गुजराती)—श्रीकृष्णलीला-रस-रसिक भक्तोंके मनको स्वस्थ वैचारिक पुष्टिहेतु गीताप्रेसद्वारा प्रकाशित तथा स्वामी अखण्डानन्द सरस्वतीद्वारा अनुवादित दशम स्कन्धका सरस शैलीमें यह भाषानुवाद है। मूल्य ₹१०० (कोड 30) हिन्दी, (कोड 1777) ओड़िआमें भी।

गोरक्षा एवं गोसंवर्धन (कोड 2132) गुजराती—प्रस्तुत पुस्तकमें गोरक्षा एवं गोसंवर्धनकी शास्त्रीय आलोकमें विलक्षण व्याख्या की गयी है। मृल्य ₹१० (कोड 1922) हिन्दीमें भी।

रामरक्षास्तोत्रम् (कोड 2134) पॉकेट साइज (गुजराती)—यह स्तोत्र आत्मरक्षाके साथ श्रीरामकी कृपा-प्राप्तिका प्रमुख साधन है। मूल्य ₹५ (कोड 231) हिन्दी, (कोड 1509) ओड़िआ, (कोड 1643) अंग्रेजी, (कोड 675) संक्षिप्त रामायणसहित तेलुगु और (कोड 912) सटीक-तेलुगु, (कोड 2053) नेपालीमें भी उपलब्ध।

श्रीनारायणकवच (कोड 2135) <mark>पॉकेट साइज (गुजराती)</mark>—प्रस्तुत पुस्तकमें प्रकाशित दोनों कवच श्रीमद्भागवत एवं स्कन्दपुराणसे संगृहीत किये गये हैं। मूल्य ₹ ५ (कोड 229) हिन्दी, (कोड 1024) तेलुगु एवं (कोड 1069) ओड़िआमें भी उपलब्ध।

मनुष्य-जीवनका उद्देश्य (कोड 994) तेलुगु—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके प्रवचनोंसे संकलित इस पुस्तकमें नि:स्वार्थ सेवा, भगवान्के स्वरूपका ध्यान आदि विभिन्न प्रकरणोंके माध्यमसे परमार्थपथकी सुन्दर व्याख्या की गयी है। मूल्य ₹१५ (कोड 1653) हिन्दी, (कोड 1717) मराठीमें भी।

भगवत्प्राप्ति कैसे हो ? (कोड 997) तेलुगु— ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके प्रवचनोंसे संगृहीत इस पुस्तकमें मन, सुगम भिक्त, वैराग्यकी मिहमा आदि चौबीस प्रकरणोंके माध्यमसे भगवत्प्राप्तिके उपायोंकी सरल व्याख्या की गयी है। मूल्य ₹१५ (कोड 1747) हिन्दीमें भी उपलब्ध।

त्यागकी महिमा (कोड 996) तेलुगु—परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके प्रवचनोंसे संकलित इस पुस्तकमें त्यागका महत्त्व, सर्वभूतिहते रता:, निरन्तर भजन कैसे करें आदि १८ विषयोंके द्वारा भगवान्की भिक्तकी महत्तापर सुन्दर प्रकाश डाला गया है। मूल्य ₹१५ (कोड 1791) हिन्दीमें भी उपलब्ध।

शान्तिका उपाय (कोड 995) तेलुगु—प्रस्तुत पुस्तकमें भगवत्प्रेम ही साध्य है, ध्यानकी विधि आदि विविध विषयोंके माध्यमसे आध्यात्मिक सुख-शान्तिकी अनुपम व्याख्या की गयी है। मूल्य ₹२० (कोड 1792) हिन्दीमें भी उपलब्ध।

श्रीमद्भगवद्गीता [नग़मा-ए-इलाही] (उर्दू-तर्जुमा) नागरी लिपिमें — पुस्तकाकार (कोड 2133)— उर्दू जबानकी यह एक छोटी-सी पुस्तक नागरी लिपिमें प्रकाशित की गयी है। इसमें सम्पूर्ण गीताका सरस एवं सरल अनुवाद किया गया है। यह पुस्तक उर्दू जबान जाननेवाले गीता-प्रेमियोंके लिये उपयोगी सिद्ध होगी। मू० ₹ २०

श्रीगङ्गाजीपर—गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित पुस्तकें

<mark>गङ्गालहरी (कोड 699) पॉकेट साइज</mark>—इस पुस्तकमें कलिकल्मष-विनाशिनीपुण्यतोया भगवती गङ्गाके स्तोत्रका सानुवाद प्रकाशन किया गया है। मूल्य ₹४

श्रीगङ्गासहस्त्रनामस्तोत्रम् नामावलिसहितम् (कोड 1709) पॉकेट साइज—यह परम पवित्र स्तोत्र पाठकर्ता भक्तोंको सुख, यश और विजय देनेवाला तथा स्वर्गका प्रदाता है। मूल्य ₹८

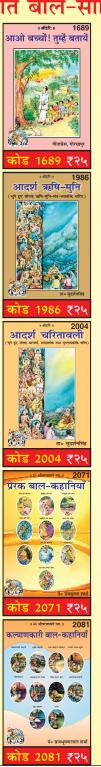
<mark>गङ्गा-अङ्क (कोड 2035)</mark>—सन् 2016 का विशेषाङ्क 'गङ्गा-अङ्क' (जिसके साथ कोई मासिक अङ्क देय नहीं है), अब पुस्तक रूपमें सीमित संख्यामें उपलब्ध है। मूल्य ₹१३० [२४ मई, दिन गुरुवारको श्रीगङ्गादशहरा है।]



LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE No. WPP/GR-03/2017-2019

गीताप्रेससे प्रकाशित बाल-साहित्य ग्रन्थाकार रंगीन चित्रोंके साथ









कोड 2079 ₹२५

उपर्युक्त १८ पुस्तकें एक साथ मँगवानेपर पुस्तक मुल्य ₹ ४६०, रजिस्टर्ड डाक एवं पैकिंग खर्च मुफ्त। टोटल ₹ ४६० भिजवाकर १ सेट बाल-साहित्य मँगवा सकते हैं। इसमें विभिन्न विषयोंपर बालकोंको सुन्दर एवं व्यावहारिक शिक्षा दी गयी है।

यह योजना १५ अगस्त २०१८ तकके लिये है।